यह दूसरा भाग

प्यारे बच्चो,

हमारे 'प्यारे बापू' के 'बचपन और शिक्षण' की कहानी आप पहले भाग में पढ़ चुके हैं। उससे आप समझ गये होंगे कि हमारे बापू यानी महात्मा गांधी का बचपन कैसे बीता और उनकी पढ़ाई कैसे हुई। इस दूसरे भाग में उनके पढ़ाई के बाद के जीवन की कहानी है। इसमें आप देखेंगे कि जीवन में सत्य और अहिंसा का आग्रह रखते हुए उन्हें अफ्रीका में कितनी मुसीबतें झेलनी पड़ीं। सरकार से भी उन्हें संघर्ष करना पड़ा। बापू का जीवन सेवा और दया का प्रतीक था। उनका संघर्ष प्रेम का था, सत्य का था। उनका असहयोग अहिंसक था। उनके पास अहिंसारूपी हथियार था। यह हथियार वही रख सकता है, जिसके हृदय में सेवा और प्रेम का झरना बहता हो।

यह कहानी भारत से बहुत दूर फ्रांस देश में रहनेवाली एक बहन ने लिखी है। उसने अपने देश की फरांसीसी भाषा में यह पुस्तक लिखी थी। पर उस भाषा में तुम उसे कैसे पढ़ पाते, इसलिए तुम्हारी हिन्दी भाषा में इसको लाने का काम किया है सरला बहन ने, जिन्होंने विदेश की होने पर भी वर्षों से भारत की सेवा में ही अपने को लगा रखा है।

बापू के अहिंसक असहयोग की इस सुन्दर कहानी से तुम बहुत-सी बातें सीखकर अपने देश का गौरव बढ़ाओगे, ऐसा हमारा विश्वास है।

अ नु क्र म

प्यारे बापू

[अहिंसक असहयोग की ओर]

दक्षिण अफ्रीका में : १ :

अफ्रीका के अंग्रेज

हिन्दुस्तान छोड़ते हुए गांधीजी के दिल में ऐसी खुशी हुई, जैसी वसंत के दिनों में पक्षियों को होती है। उन्होंने यह कभी नहीं सोचा कि इस देश-निकाले में उन्हें कितनी दिक्कतों का सामना करना पड़ेगा।

विलायत में उन्होंने अंग्रेजों को पहचान लिया था। उन्होंने समझ लिया था कि वे अच्छे और सच्चे होते हैं। हिन्दुस्तान में अन्याय की कुछ घटनाओं से उनके मन में कुछ शंकाएँ अवश्य पैदा हुई थीं, फिर भी पश्चिमी सभ्यता में उनका पक्का विश्वास बना था। वे समझते थे कि ब्रिटेन मानव की भलाई ही चाहता है। वे परमात्मा को धन्यवाद देते थे कि वे भी ब्रिटेन की प्रजा के अंग हैं।

लेकिन नेटाल की भूमि में प्रवेश करने पर उन्हें वास्तविकता का ज्ञान हुआ। उनका जहाज डरबन पर रुका। वहाँ कुछ गोरे लोग जहाज पर सवार हुए। गांधीजी ने तब अपनी आँखों से देखा कि ये गोरे लोग हिन्दुस्तानियों से कितनी घृणा करते हैं।

जिस कम्पनी का काम गांधीजी ने एक साल तक करने का वचन दिया था, उस कम्पनी के एजेण्ट का नाम था दादा अब्दुल्ला। वे गांधीजी को लेने के लिए जहाज पर आये। उन्होंने उन्हें कई बातें समझायीं।

"अगर हम लोग यहाँ पर शांति से रहना चाहते हैं और थोड़े-बहुत रुपये कमाने का अवसर चाहते हैं, तो हमें गधे की तरह सहनशील होना चाहिए। हमें कितने ही अपमान सहने पड़ते हैं। आपको थोड़े समय में ये सब बातें अपने-आप मालूम हो जायँगी।"

ये बातें बहुत आशाजनक तो नहीं थीं।

कुछ दिनों के बाद दादा अब्दुल्ला ने गांधीजी को बुलाया। "क्या आप मेरे साथ अदालत चलना चाहते हैं?"

"अवश्य।"

वे उन्हें ले गये और अपने वकील के पास बिठाया। गांधीजी अचकन और साफा पहने हुए थे। उनका साफा न्यायाधीश को पसन्द नहीं आया।

"तुम या तो अपना साफा उतार दो या अदालत के बाहर चले जाओ।"

गांधीजी ने बाहर जाना पसन्द किया।

"उसे मेरे साफे से क्या मतलब ?"

दादा अब्दुल्ला ने समझाया : "अगर आप मुसलमानी पोशाक पहने हुए होते, तो न्यायाधीश आपसे कुछ न कहते। लेकिन यहाँ लोग हम हिन्दुओं को 'कुली' मानते हैं। दक्षिण अफ्रीका में 'कुली' का अर्थ एक ईमानदार मजदूर नहीं होता। यहाँ हर प्रकार के नीच व्यक्ति को कुली कहते हैं। ये कुलियों को अछूत मानते हैं। हिन्दुओं को सरकारी जगहों में साफा पहनने का अधिकार नहीं है।"

गांधीजी गुस्से से काँप उठे।

"क्यों भाई, आप इस सिलसिले में कुछ नहीं करते ?"

दादा अब्दुल्ला चुप रहे।

"अच्छा, मैं समाचार-पत्र में लिखूँगा। मैं शिकायत करूँगा। हरएक हिन्दुस्तानी को न्याय का अधिकार है। अगर हम भय के कारण अन्याय को सहते चले जायँ, तो हमारी प्रगति कैसे होगी ?"

दादा अब्दुल्ला मुसकराये। "कीजियेगा ! कुछ होगा नहीं !!"

"नहीं-नहीं, मुझे जरूर सफलता मिलेगी। हमारे

अंग्रेज भाई स्वामि-भक्ति को पसंद करते हैं। वे मेरी बात समझेंगे।"

रेल की घटना

इस बीच पत्रिकाओं में दिये गये गांधीजी के पत्र के कारण गोरों को काफी गुस्सा आया।

"हम उसे नहीं चाहते हैं। वह जहाँ से आया, वहीं उसे वापस करना चाहिए।"

दूसरी ओर हिन्दुस्तानी लोग गांधीजी की मदद करने दौड़े आये। कई अंग्रेज भी यह कहने आये कि ये भी उनके पक्ष में हैं।

कुछ दिनों बाद गांधीजी डरबन से प्रिटोरिया के लिए रवाना हुए। दादा अब्दुल्ला से विदा लेकर वे पहले दर्जे के डिब्बे में बैठ गये।

आधी रात के समय गाड़ी नेटाल की राजधानी मरित्सबर्ग पहुँची। उस समय शहर में घूमना व्यर्थ था, इसलिए गांधीजी उस डिब्बे में ही बैठे रह गये। वे अपने नये जीवन पर विचार करते रहे और अपने परिवार का स्मरण करते रहे।

उसी समय डिब्बे में एक और यात्री आ गया। उसने बड़े गौर से और बड़ी क्रूर दृष्टि से सिर से पैर तक गांधीजी का निरीक्षण किया। ऐसा लगा कि यह

दृश्य उसे पसन्द नहीं आया। वह निकला और कुछ देर में रेल के एक अधिकारी को साथ लेकर आ गया।

और अपमान

अब दोनों आदमी गांधीजी को डाँटने लगे और आपस में फुसफुसाने लगे। गांधीजी की कुछ समझ में नहीं आया कि ये लोग क्या कह रहे हैं। वे शांति से लेटे रहे।

अन्त में रेलवे अधिकारी ने आगे बढ़कर कहा: "उठो, तीसरे दर्जे में जाकर बैठो।"

गांधीजी ने समझा कि वह भूल से ऐसा कह रहा है। बोले: "क्षमा कीजिये, मेरे पास पहले दर्जे का टिकट है।"

"कोई बात नहीं, ऐसे सिरवाले लोग सज्जन लोगों के साथ बैठकर सफर नहीं कर सकते।"

गांधीजी ने समझा कि यह भेद-भाव रंग-भेद के कारण है। वे काले थे न! अब तक उन्होंने नहीं समझा था कि कुछ गोरे लोग हरएक काले आदमी को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं।

उन्होंने बड़ी शान्ति से कहा: "नहीं! मैं यहाँ से नहीं हटूँगा। मेरे पास पहले दर्जे का टिकट है। उसे खरीदते समय किसीने कुछ नहीं कहा था।"

अधिकारी ने खूब नाराज होकर पुलिस को बुलाया।

पुलिस ने गांधीजी को जबरन बाहर निकाल दिया। लोगों ने उनका सामान उठाकर उन्हें खिड़की से प्लेटफार्म की ओर फेंक दिया। गांधीजी ने तीसरे दर्जे में बैठने से इनकार किया था, इसलिए रेलगाड़ी उन्हें प्लेटफार्म पर छोड़कर चली गयी। गांधीजी ने मरित्सबर्ग स्टेशन पर यह रात बड़ी मुश्किल से काटी। अँधेरी रात थी, जाड़ा भी काफी था और उनके पास चेस्टर भी नहीं था। अपने सामान में चेस्टर खोजने की हिम्मत भी न हुई। उन्होंने सारी रात लकड़ी की बेंच पर बैठकर ही बितायी। सोचा, सवेरे तक शायद कुछ न्याय हो।

यह स्थिति देखकर गांधीजी की इच्छा हुई कि सब कुछ छोड़कर भारत लौट चलूँ। उनका जी ऊब उठा। उन्हें और आगे लड़ने की हिम्मत न रही।

लेकिन उनके हृदय के भीतर की आवाज चुप नहीं बैठी थी। वह उन्हें आगे लड़ने की प्रेरणा देती रही—

"यदि तुम इसी पहली कठिनाई को देखकर अपने देश को लौट पड़ोगे, तो यह बड़ी कायरता होगी। यदि तुम यहीं रहकर अपने देशवासियों की तकलीफें दूर करने की कोशिश करो, तो क्या ज्यादा अच्छा नहीं होगा? इसलिए पहली पराजय से तुम्हें हार नहीं माननी चाहिए।"

यह छोटी आवाज कभी गुस्से में, कभी मीठे स्वर में उन्हें रातभर उपदेश देती रही।

दूसरे दिन सुबह गांधीजी ने डाकखाने में जाकर दादा अब्दुल्ला को एक लम्बा तार भेजा। दूसरा इसी प्रकार का तार उन्होंने रेल के व्यवस्थापक को भेजकर रात की घटना की शिकायत की।

बेचारे अब्दुल्ला गांधीजी का तार लेकर रलवे के व्यवस्थापक से मिलने गये। वे कॉफी पी रहे थे और साथ-साथ सिगार भी।

"इतनी छोटी-सी बात के लिए मैं अपने नौकर को सजा नहीं दे सकता। मैं सिर्फ आपके साथी को अच्छी तरह प्रिटोरिया पहुँचने का इन्तजाम कर दूँगा। जाइये—शान्ति से जाइये—कोई बात नहीं।"

पर दादा अब्दुल्ला शान्त न हुए। मरित्सबर्ग और रास्ते में जहाँ-जहाँ गांधीजी को ठहरना था, उन्होंने अपने मित्रों को तार दे दिये।

दादा अब्दुल्ला के मित्र स्टेशन पर गांधीजी से मिलने आये थे। वे दिनभर मरित्सबर्ग में ठहरे।

दादा अब्दुल्ला के एक हिन्दुस्तानी मित्र ने गांधीजी को समझाया : "यह इस किस्म की पहली घटना नहीं है। अगर हम चाहते हैं कि अंग्रेज हमारे साथ ऐसा बुरा व्यवहार न करें, तो हमें अक्सर उनके सामने झुकना चाहिए और पहले या दूसरे दर्जे में कभी सफर नहीं करना चाहिए। गोरे लोग हमें समानता देना नहीं चाहते।"

दूसरे मित्र ने कहा : "आपको मालूम नहीं, हम लोगों को कितने अपमानों का सामना करना पड़ता है। पैर की लात तो एक छोटी-सी बात है।"

अपने देशवासियों द्वारा ये बातें सुनकर गांधीजी को बड़ा दुःख हुआ।

शाम को उन्होंने चार्ल्सटाउन की गाड़ी पकड़ी। वहाँ से जोहान्सबर्ग जाने के लिए उन्हें घोड़ागाड़ी में बैठना था। उन दिनों वहाँ रेल नहीं जाती थी।

गांधीजी ने अपना टिकट दिखलाया। उसे देखते ही बहुत भद्दे ढंग से उनसे कहा गया : "बाहर बैठो साईस के पास!"

उस टिकट से गांधीजी को भीतर बैठने का अधिकार था। उस आदमी ने गलत बात कहकर गांधीजी का अपमान किया। लेकिन उन्हें नये झगड़े में फँसने की हिम्मत न थी।

"अच्छी बात है। मैं साईस के पास बैठ जाऊँगा।"

साईस ने अपने घोड़ों को हाँका और वे तेजी से चल पड़े।

कुछ घंटों के बाद गाड़ी घोड़ों को बदलने के लिए रुक गयी। टिकट बाबू साईस के पास आकर गपशप लगाने लगा। बीच-बीच में वह गांधीजी को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखता रहा। कौन जाने कि वह मन ही मन

क्या-क्या सोच रहा था ? जब गाड़ी के चलने की तैयारी हो गयी, तो टिकट बाबू ने गांधीजी को ढकेलकर कहा : "यह जगह खाली करो, मैं साईस के पास बैठूँगा ।"

यह इशारा उनके पैरों के नीचे बैठने का था ।

"आपको धन्यवाद है, लेकिन मैं वहाँ नहीं बैठ सकता ! हाँ, आप अगर चाहें, तो मुझे भीतर बैठने में कोई आपत्ति नहीं ।"

गांधीजी के सही उत्तर पर भी टिकट बाबू को बड़ा गुस्सा आया । वह गांधीजी पर झपट पड़ा और उसने उन्हें चपतें लगायीं । फिर उसने उनका हाथ पकड़कर उन्हें मिट्टी में गिराने की कोशिश की । गांधीजी गाड़ी को पकड़े रहे ।

उनके हाथ टूटने को थे । टिकट बाबू काफी तगड़ा था, गांधीजी कमजोर । वह उन्हें पीटता रहा । वह उन्हें लातें भी मारता रहा । वह चिल्लाता रहा और चिल्लाते-चिल्लाते मारता रहा ।

अहिंसा की पहली झलक

गांधीजी मुँह बंद किये गाड़ी को पकड़े रहे । "नहीं भाई ! तुमसे मुझे घृणा नहीं है । यह गलती तुम्हारी नहीं है । न तो तुम्हारी माँ ने तुम्हें अहिंसा सिखलायी, न

तुम्हारे पिताजी ने और न शिक्षक ने। इसलिए तुम मुझे पीटते भी रहो, तो मैं कुछ न करूँगा।"

दूसरे यात्रियों ने शोर सुना और मारपीट होते देखी। वे दौड़कर आये। उस बाबू के क्रोध को देखकर उन्हें घृणा हुई।

सब लोग चिल्लाने लगे: "उन्हें छोड़ दो। छोड़ दो। वे ठीक कह रहे हैं। वे भीतर आकर हमारे साथ बैठेंगे। वे ठीक कहते हैं।"

एक महिला की तबीयत खराब हुई। एक छोटा बच्चा जोर से चिल्लाकर भाग गया। अंत में इतनी मेहनत से थककर उस आदमी ने गांधीजी को छोड़ दिया। साईस की दूसरी तरफ बैठे हुए एक हबशी नौकर ने उन्हें वहाँ बैठने की जगह दी। गाड़ी चल पड़ी। रास्ते भर, स्टेण्डटन तक वह टिकट बाबू गांधीजी को गाली देता रहा।

"अच्छा ठहरो! स्टेण्डरटन पहुँचने दो, तब देख लूँगा।"

अगर गांधीजी ने अपने गुस्से को न रोका होता, उन्होंने भी गुस्से में आकर उसे पीट दिया होता, तो शायद उनकी उत्तेजना शान्त हो जाती। लेकिन गांधीजी ने इससे भी अधिक साहस का काम करना चाहा। उन्होंने ईसा और बुद्ध की बातें अपनानी चाहीं।

बच्चो, तुम जानते हो न ! यह कोई आसान काम नहीं है। इसके लिए अपनी सारी इच्छा-शक्ति और आत्मशक्ति की आवश्यकता है। अपमान सहते-सहते हमें शान्त रहना पड़ता है। अज्ञानी लोग कहते हैं कि यह कायरता है। लेकिन वे गलती करते हैं। बात इससे बिलकुल उलटी है। यह सबसे बड़ी हिम्मत है।

अपमान जारी रहे

स्टेण्डरटन में घंटों तक गांधीजी अपने देशवासियों की शिकायतें सुनते रहे। "हाँ, ये गोरे लोग हमें तुच्छ समझते हैं। ये हमें पसन्द नहीं करते। ये समझते हैं कि हम उन टिड्डियों के गिरोह जैसे हैं, जो अफ्रीका के सुन्दर खेतों का नाश करते हैं।"

इस प्रकार गांधीजी को अपना दुःख सुनाने में उन लोगों को कुछ शान्ति मिलती थी। लेकिन गांधीजी उनकी बातों को भूल नहीं सकते थे। हर आदमी का दुःख सुनकर उन्हें ऐसा लगता था, मानो किसीने उनका शरीर लाल गरम लोहे से दाग दिया हो। इन बातों ने उन्हें बेचैन कर दिया। वे एक मिनट भी शान्ति से न बैठ सके।

फिर एक बार गांधीजी ने कलम उठाकर गाड़ी की कम्पनी को चिट्ठी लिखी। उन्हें उस घटना की सूचना

देना आवश्यक था। फिर वे आगे बढ़े और दूसरे दिन बिना कोई घटना घटे जोहान्सबर्ग में पहुँच गये। जोहान्स-बर्ग बड़ा शहर है। गांधीजी होटल में जाना चाहते थे। अपना सूटकेस और कोट पकड़े हुए वे सारे शहर में घूमते-घूमते एक खाली कमरा खोजने लगे। उन दिनों जोहान्सबर्ग में बहुत-से होटल खुल गये थे। लेकिन जहाँ भी गांधीजी जाकर पूछते, होटलवाले उन्हें घृणा की दृष्टि से देखकर कहते: "हमारे पास कोई खाली कमरा नहीं है।"

जब गांधीजी ऐसा करते-करते थक गये, तो वे एक हिन्दुस्तानी मित्र की खोज में निकले।

उसने पूछा: "क्यों भाई, क्या तुमने सचमुच समझा कि होटलों में तुम्हें खाली कमरा मिलनेवाला है?"

"अवश्य! क्यों नहीं?"

"क्यों नहीं? क्यों नहीं? क्या आप यहाँ की हालत से परिचित नहीं हैं?"

सब होटलों में कमरे खाली थे। लेकिन ये कमरे काले आदमियों के लिए नहीं थे। दक्षिण अफ्रीका में गोरे लोग काले लोगों को पसन्द नहीं करते।

उस हिन्दुस्तानी व्यापारी ने गांधीजी को नयी-नयी दुखभरी कहानियाँ सुनायीं। यहाँ उन्हें दक्षिण अफ्रीका

में रहनेवाले हिन्दुस्तानी भाइयों के कष्टों को देखने का अवसर मिला।

इस तरह के अन्याय को सहन करना उनके लिए दूभर हो गया। प्रत्येक भारतीय ने गांधीजी को सहयोग देने का वचन दिया। यों गांधीजी पर भार बढ़ता गया।

एक बार फिर प्रिटोरिया की गाड़ी में बैठने का अवसर आया। अपनी जिद से इस बार भी गांधीजी ने प्रथम श्रेणी का ही टिकट लिया। शाम को टिकट बाबू टिकट देखने आये। उन्हें गांधीजी पर बहुत गुस्सा आया।

उन्होंने कहा : "निकलो यहाँ से और जाकर तीसरे दर्जे के डिब्बे में बैठो।"

गांधीजी ने धैर्य के साथ उत्तर दिया : "मैं नहीं जाऊँगा। मेरा टिकट पहले दर्जे का है।"

टिकट बाबू दुगुने जोर से चिल्लाया : "लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम तीसरे दर्जे में जाओ।"

यह पुराना-सा किस्सा हो गया।

सौभाग्य से उस डिब्बे में एक व्यक्ति और बैठा था। वह उठकर बोला : "टिकट बाबू, कृपा करके इन साहब को बैठने दीजिये। ये ठीक कहते हैं। इनके पास प्रथम श्रेणी का टिकट है। इसमें मुझे तनिक भी कष्ट न होगा।"

टिकट बाबू हताश हो गये। "वाह! मैं तो आपके

लिए ही इसे निकाल रहा था। जैसी आपकी इच्छा !"
और वह चल दिया।

लगभग आठ बजे रात को गाड़ी की सीटी जोर से बजी और इसके बाद गाड़ी रुक गयी।

प्रिटोरिया आ गया था, यात्रा पूरी हो गयी थी।

सच्चे वकील के रूप में

होटल में कमरा न मिलने से गांधीजी को तकलीफ हुई। अन्य जगहों की तरह ट्रांसवाल में भी गोरे लोग काले लोगों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। परन्तु अन्त में गांधीजी को एक ऐसा होटल मिला, जहाँ लोग उन्हें एक कमरा देने को तैयार थे। होटलवाले ने उनसे प्रार्थना की कि वे खाने के लिए होटल के खाने के कमरे में न आयें।

"मुझे डर है कि शायद मेरे दूसरे अतिथि इसमें अपना अपमान समझें ! आप क्षमा कीजिये। मैं खुद रंग-भेद बिलकुल नहीं मानता हूँ। लेकिन मैं गरीब आदमी हूँ। अगर मेरे अतिथि बिगड़ेंगे, तो मेरे लिए संकट पैदा हो जायगा।"

दादा अब्दुल्ला के मुकदमे के लिए गांधीजी को एक साल तक प्रिटोरिया में रहना पड़ा। उन्हें एक ऐसी बुढ़िया मिली, जिसने बड़े प्रेम से उनके रहने के लिए एक

कमरा दे दिया। वे तुरत अपने काम में लग गये। उनका मुकदमा बहुत उलझा हुआ था।

यहाँ रहते हुए गांधीजी ने पहली बार इस बात को अच्छी तरह समझा कि वकील का कर्तव्य दोनों पक्षों में समझौता कराना है। अगर सफल वकील होना है, तो सबसे पहले अपने मुवक्किल का स्वभाव समझना चाहिए। उनके गुण और अवगुण पहचानना आवश्यक है। उनके गुणों को प्रोत्साहन देना चाहिए, ताकि वे पहले से भी अच्छे हो जायँ।

उन्हें अपने पिताजी की बात याद आती थी— "अगर तुम चाहते हो कि कोई मनुष्य तुम्हारे साथ अच्छा बर्ताव करे, तो सबसे पहले इस बात की जरूरत है कि तुम उसके सद्गुणों पर विश्वास करो। तुम किसी व्यक्ति के गुण और स्वामि-भक्ति में जितना अधिक विश्वास करोगे, तुम्हें धोखा देना उसके लिए उतना ही कठिन हो जायगा। इस प्रकार तुम उसे स्वयं सुधारने में मदद दोगे।"

उनके पिताजी ठीक कहते थे। गांधीजी ने ऐसा किया भी। अपने मुवक्किल के साथ बातचीत की। एक साल के बाद दादा अब्दुल्ला के मुकदमे का समझौता हुआ। दोनों मुवक्किलों ने संतोष की साँस ली। अगर यह

मुकदमा इस प्रकार और कुछ दिनों तक चलता रहता, तो दोनों का दिवाला पिट जाता।

वकालत का काम करते हुए गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में रहनेवाले हिन्दुस्तानियों की स्थिति का अध्ययन करते रहे। उन्हें गोरों का अत्याचार सहना पड़ता था। फिर भी उनमें इतना संगठन और सहानुभूति नहीं थी कि ये मुकाबला करके जीत सकें। इसके सिवा उन्होंने अपने सच्चे धर्म को बिलकुल छोड़ दिया था।

उन्होंने सफाई के नियम तक छोड़ दिये। उनकी मनोवृत्ति बिलकुल दास जैसी हो गयी थी। ये हर तरह के अन्याय सह लेते थे। अहिंसा से नहीं—उदासीनता से। यह तो सबसे बुरी बात है।

संगठन की प्रेरणा

गांधीजी ने निश्चय किया कि वे बीच-बीच में इन लोगों को इकट्ठा कर समझाते रहेंगे। पहला प्रवचन उन्होंने खास तौर से व्यापारियों के सामने किया। व्यापारियों से मिलने का मौका उन्हें बार-बार मिलता था। ये अच्छे लोग थे। कोई भी बुरा काम वे करना नहीं चाहते थे। लेकिन गांधीजी उनकी दलीलों से संतुष्ट नहीं थे। व्यवसाय के सिलसिले में उनका दृष्टिकोण सही नहीं था। वे कहा करते थे :

"हम व्यापारी लोग आत्मविश्वास का खयाल तक नहीं कर सकते हैं। हमारा व्यवसाय हमें बेईमान बनाने के लिए विवश करता है।"

गांधीजी ने उन्हें समझाया : "सुनिये, ऐसा न कहिये कि व्यापार में ईमानदारी से रहना असम्भव है। ऐसा न होगा। हम व्यापारी हैं, साधु नहीं। हम न दर्शनशास्त्री हैं, न राजनीतिज्ञ। हमारा सारा समय और लक्ष्य नफा कमाने में जाता है।

"भाइयो, क्या आप नहीं जानते कि हर रास्ता हमें परमेश्वर के पास पहुँचा सकता है ?

"जीवन एक बड़ी चट्टान की भाँति है। हम उसके आधार की परिक्रमा करते रहते हैं और परिश्रमी तथा साहसी होते हुए उस पर चढ़ने का प्रयत्न करते हैं। हर-एक अपना अलग-अलग रास्ता चुनता है।

"दर्शनशास्त्री, व्यापारी, भिक्षु, साधु, राजनीतिज्ञ, इनमें से कितने ही लोग अपने मन में सोचते हैं कि केवल उसीका रास्ता लक्ष्य या आदर्श तक पहुँचेगा। केवल मैं ही मुक्ति पाऊँगा। वे चढ़ते हैं, ऊपर चढ़ते हैं, पर अधिकांश लोग रास्ते में थक जाते हैं। कुछ रुक जाते हैं। वे और आगे नहीं चढ़ पाते हैं। जो आधे रास्ते में रुक जाते हैं, वे हार जाते हैं।

"दूसरे यात्री, जिनमें आत्मविश्वास अधिक है, साहस

अधिक है, जो अधिक दृढ़ होते हैं, वे चढ़ते रहते हैं तथा खूब प्रयत्न, मन्थन और ठोकरों के बाद वे चट्टान की चोटी तक पहुँचते हैं, वे ही मुक्ति पाते हैं।

"और वे फिर क्या देखते हैं?

"वे देखते हैं कि चारों ओर से, सब रास्तों से और-और यात्री लोग भी चोटी तक पहुँच रहे हैं। वे हैं—दर्शनशास्त्री, साधु, व्यापारी और भिक्षुक।

"तो मैं आपसे कहता हूँ कि सब सड़कें हमें मुक्ति तक पहुँचा सकती हैं, बशर्ते कि हम अन्त तक उन पर चलें। प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक व्यवसाय द्वारा अपने रास्ते पर चलते-चलते मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।

"भाइयो! हम सब साथी हैं। हमारा लक्ष्य एक ही है। इसलिए हम धर्म और वर्ण के सब भेद भूल जायँ। हम संगठन करें। हम अपनी एक संस्था बनायें। हम एक-दूसरे की मदद करें। हम एक-दूसरे के अधिकारों की रक्षा करें।

"जब कभी भी अन्याय होगा, अत्याचार होगा, तो हमारे सदस्य अक्सर जिम्मेदार लोगों के पास जाकर शिकायत करेंगे। इस प्रकार धीरे-धीरे गोरे लोग भी हमारी परिस्थिति समझने लगेंगे।"

लोगों ने गांधीजी के प्रस्ताव को स्वीकार किया और एक संस्था की स्थापना हुई।

इस नवनिर्मित संस्था की बैठकें हर सप्ताह हुआ करती थीं। सदस्य हर आवश्यक बात की चर्चा करके किसी निर्णय पर पहुँचते थे। संस्था के द्वारा धीरे-धीरे ये लोग अन्याय के मामलों में जीतकर न्याय पाने लगे।

सबसे पहले इन्होंने रेलवे कम्पनी को लिखा। वहाँ से फौरन उत्तर मिला : "भविष्य में हर हिन्दुस्तानी को पहले या दूसरे दर्जे में यात्रा करने का अधिकार होगा, बशर्ते कि वह सभ्य लोगों के-से कपड़े पहने हो।"

रात को नौ बजे के बाद बिना स्वीकृति-पत्र के हिन्दुस्तानियों को घूमना मना था। इस सिलसिले में भी उन्होंने विजय पायी।

लेकिन और भी बहुत-से अन्याय चालू थे। इसके लिए बहुत धैर्य की आवश्यकता थी। एक बार घूमते-घामते गांधीजी लाट साहब के मकान के सामने जा रहे थे। उन्हें पता नहीं था कि यहाँ घूमना मना है। पुलिस के सिपाही ने तुरत उन पर झपटकर उन्हें नाली में फेंक दिया। उस समय गांधीजी का एक मित्र वहाँ से होकर जा रहा था, जिसने इस घटना को देखा।

"आप अपनी शिकायत पेश कीजियेगा। मैं गवाही दूँगा। उस बेईमान को सजा मिलनी चाहिए।"

गांधीजी ने कहा : "नहीं, नहीं, मैं ऐसा कुछ नहीं करूँगा।"

क्यों ? क्योंकि उन्होंने अपनी आन्तरिक आवाज को वचन दिया था कि वे कभी अपनी व्यक्तिगत दिक्कतों की शिकायत नहीं करेंगे।

वे अगर लड़ते थे, तो अपने निजी लाभ के लिए नहीं। वे सिर्फ यह चाहते थे कि न्याय और प्रेम से वे अपने दुखी भाइयों का जीवन कुछ सुखमय बना सकें।

बच्चो, याद रखो कि तुम नये भारत के निर्माता हो। तुम लोगों का कर्तव्य है कि तुम कभी किसीसे द्वेष न करो। अगर तुम एक क्षण के लिए भी इस बात को भूल जाओगे, तो गांधीजी का सिद्धान्त दूषित हो जायगा; क्योंकि वे तुमसे द्वेष और क्रोध के रास्ते पर चलने के लिए नहीं कहते थे; बल्कि प्रेम के कठिन रास्ते पर चलने को कहते थे। वे समझते थे कि वे कितकने मजोर हैं। परन्तु उन्होंने प्रयत्न करके अपनी कमजोरी पर विजय प्राप्त की।

गोरों का गुस्सा

दक्षिण अफ्रीका में एक साल तक काम करने के बाद गांधीजी अपने घर लौटे। वहाँ पहुँचने पर सब लोग उनसे पूछने लगे कि अफ्रीका में लोग कैसे रहते हैं ? तब उन्हें सारी बातें बतानी पड़ीं। सच्ची परिस्थिति लोगों से छिपी न रह सकी।

सारी बातों का खुलासा करने के पहले इस पर

गांधीजी ने बहुत सोच-विचार किया। वे नहीं चाहते थे कि भारतीय लोग दक्षिण अफ्रीका के गोरों से नाराज हों। पर सच्ची स्थिति भी उनसे छिपायी नहीं जा सकती थी। इससे नेटाल के गोरे लोग गांधीजी पर बहुत नाराज हुए। ठीक इसी समय दक्षिण अफ्रीका से उन्हें तार मिला, जिसमें उन्हें वहाँ दुबारा बुलाया गया था।

गांधीजी अब अपनी पत्नी और पुत्र से अलग रहना नहीं चाहते थे। इसलिए वे उन्हें लेकर डरबन के जहाज पर सवार हुए। उसी जहाज से तीन-चार सौ अन्य भारतीय भी वहाँ जा रहे थे। एक दूसरा जहाज भी उसी रोज रवाना हुआ। उस पर भी तीन-चार सौ भारतीय थे।

जब नेटाल के गोरों ने सुना कि ये लोग पहुँच गये हैं, तो उनमें बड़ी हलचल मची। वे गांधीजी पर बहुत नाराज थे। वे सोचने लगे कि ये लोग नेटाल पर हमला करना चाहते हैं तथा सब हिन्दुस्तानी लोगों को साथ ला रहे हैं।

वे चिल्लाने लगे : "हम उन्हें बन्दरगाह पर उतरने न देंगे।"

सरकार ने संक्रामक रोग के बहाने जहाज के लोगों को उतरने से मना किया। जब दोनों जहाज घाट पर लगे, तो जहाज से कोई व्यक्ति उतरने न पाया। इस प्रकार तीन सप्ताह तक उन्हें डरबन के सामने रोका गया। यों

सरकार ने बड़ा अन्याय किया, क्योंकि दोनों जहाजों पर एक भी रोगी न था।

अन्त में सरकार ने उन्हें उतरने की आज्ञा दे दी। वह कब तक बिना कारण आठ सौ लोगों को रोके रहती? गोरे लोग आपे से बाहर हो गये। उन्होंने दोनों जहाजों पर आग लगाने की धमकी दी और कहा : "उतरने की कोशिश करो तो सही, हम तुम्हें समुद्र में फेंक देंगे।"

गोरे अधिकारी जनता को शान्त करने की कोशिश कर रहे थे। उन्होंने गोरों से कहा कि वे एक ऐसा कानून बनायेंगे, जो भारतीय लोगों का वहाँ आना ही रोक देगा। तब गोरे लोग शान्त होकर अपने घरों को चल पड़े।

अन्त में भारतीय यात्री जहाज से उतरे। गांधीजी भी उनके साथ जाने को तैयार हुए। तब उन्हें पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट से सूचना मिली : "गांधीजी, आपके हित को ध्यान में रखकर हम आपको यह आदेश देते हैं कि आप अँधेरी रात के पहले जहाज से न उतरें। गोरे लोग आपसे बहुत नाराज हैं। अगर उन्होंने आपको पहचान लिया, तो आपका जीवन संकट में पड़ जायगा।"

गांधीजी ने उनकी सलाह नहीं मानी। वे साफा पहनकर उतर गये। यह लगभग चार बजे शाम की बात है। जिस मित्र के मकान में वे शाम को ठहरनेवाले थे, वहाँ तक जाने में लगभग एक घण्टा लगता था।

गांधीजी के उतरते ही बन्दरगाह पर खेलते हुए बच्चों ने उन्हें पहचान लिया। वे चिल्लाने लगे : "अरे! गांधी आया। गांधी आया। पत्थर फेंको। पत्थर फेंको।"

स्त्री-पुरुषों ने भी बच्चों की चिल्लाहट सुनी। वे चारों ओर से दौड़कर आये। गांधी पर पत्थरों की वर्षा होने लगी। छोटे बच्चे खूब गुस्से से भरकर गोबर तथा अन्य गन्दी चीजें उठाकर उन पर फेंकने लगे। एक पहलवान ने आगे बढ़कर उन्हें पकड़ा। उनका साफा कीचड़ में गिर गया। गांधीजी बेहोशी में गिरने को थे, तभी उन्होंने एक मकान का जंगला पकड़ लिया।

गांधीजी पर पत्थरों और गोलियों की वर्षा जारी थी। वे सोचने लगे, अब मैं कभी भी जीवित न पहुँच सकूँगा। वे दुबारा धीरे-धीरे करके आगे बढ़ने लगे। उनकी जाँघ में बहुत ज्यादा दर्द हो रहा था। सारा शरीर भी दुख रहा था। वे अधिक आगे नहीं बढ़ सके।

एक अंग्रेज वीरांगना

जब गांधीजी एकाएक गिरने ही वाले थे, तभी एक महिला को उन्होंने अपनी ओर आते हुए देखा। वह भीड़ को चीरकर आगे बढ़ी। वह पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट की पत्नी थी। भीड़ ने उसे पहचान लिया।

"श्रीमती एलेक्सेण्डर ! मैडम एलेक्सेण्डर ! सावधान, उन्हें कहीं चोट न लगे ।"

श्रीमती एलेक्सेण्डर गांधीजी की दुविधा को समझ गयीं । गांधीजी को बचाने के लिए उन्होंने अपना छाता खोला । उनका हाथ पकड़ वे उन्हें गांधीजी के मित्र के घर तक पहुँचा आयीं । थोड़ी देर में इस घटना की सूचना सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब को भी मिल गयी । उन्होंने गांधीजी को बचाने का निश्चय किया । इतने में ही गांधीजी के मित्र के मकान के सामने हजारों गोरे इकट्ठे हो गये । ये दरवाजा खटखटाते रहे और चिल्लाते रहे : "गांधी ! गांधी !! गांधी कहाँ है ? उसे बाहर निकालो ।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब ने सोचा कि इस समय कुछ चालाकी की जरूरत है । नहीं तो कुछ गम्भीर घटना घट सकती है । तब भीड़ को समझाने के बहाने वे एक सन्दूक पर चढ़ गये, जिससे मकान का दरवाजा बन्द हो गया था । ठीक उसी समय भारतीय वेष में एक खुफिया गांधीजी की खोज में आया ।

उसने कहा : "गांधीजी, मैं सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब की तरफ से आया हूँ । वे आपसे निवेदन कर रहे हैं कि आप फौरन भारतीय पुलिस के रूप में यहाँ से चले जायँ । एक गाड़ी हम दोनों के लिए तैयार है । मुझे आपको थाने

तक पहुँचाना है। वहीं आप सुरक्षित रहेंगे। जनता इस मकान को जलाने का इरादा कर रही है।"

गांधीजी ने उत्तर दिया कि "मैं अपने मेजबान को बचाने के लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ।" उन्होंने पुलिस के कपड़े पहने।

इस बीच एलेक्सेण्डर साहब बड़ी चतुराई से भीड़ को बहला रहे थे। कभी गाना गाकर लोगों को हँसा रहे थे, कभी बिना मतलब के लम्बे-लम्बे भाषण करते रहे। आखिर में खुफिया ने लौटकर उनसे कहा कि गांधीजी कुशल से थाने पहुँच गये हैं। सुपरिण्टेण्डेण्ट ने फौरन अपना रुख बदला। वे नाराज होकर कहने लगे : "अब काफी हो गया। अब यह खेल समाप्त करो। तुम लोग चाहते क्या हो?"

"हम गांधी को चाहते हैं, गांधी को।"

"क्यों? उन्होंने क्या अपराध किया है?"

"वह सैकड़ों कुलियों को लेकर आया है। अब हमें मजदूरी नहीं मिलेगी। ये लोग हमारी मजदूरी छीन लेंगे। हमारे बदले ये लोग काम करने लग जायेंगे। हम गांधी को जिन्दा ही जला देंगे। कृपा करके उसे हमें दे दीजिये।"

"अच्छा! भाइयो" सुपरिण्टेण्डेण्ट ने कहा : "गांधी तुम्हें अब इस घर में नहीं मिलेगा।"

"झूठी बात ! झूठी बात !! अगर वह बाहर न निकले, तो हम उसके लिए इस घर को ही आग लगा देंगे ।"

"तुम लोग मेरी बातों पर विश्वास नहीं करते हो ? शर्म की बात है यह ! तुम क्यों गुंडागर्दी करते हो ? गांधी पुलिस थाने पर हैं । तुम लोग शान्तिपूर्वक अपने-अपने घरों को जाओ ।" अब सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब की आवाज में सख्ती आयी । ऐसी आवाज सुनकर भीड़ पछताने लगी ।

आँधी के बाद

इस घटना के सिलसिले में एक पत्रकार गांधीजी से मिलने आये । वे जानना चाहते थे कि इस घटना के बारे में गांधीजी का क्या विचार था । गांधीजी ने कहा : "गोरे लोग भूल में हैं । मेरे देशवासी नेटाल पर हमला करने नहीं आये । उनमें अधिकतर ऐसे व्यापारी थे, जो बहुत वर्षों से अफ्रीका में व्यापार कर रहे हैं । ये लोग छुट्टियों में अपने घर गये हुए थे और अब अपना काम सँभालने के लिए फिर अफ्रीका लौट आये हैं । मेरे साथी किसी प्रकार गोरों को हानि पहुँचाना नहीं चाहते । उनके साथ ऐसा व्यवहार करना बुरी बात है ।"

दूसरे दिन गोरों ने अपने समाचार-पत्रों में गांधीजी का वक्तव्य पढ़ा । समझदार लोगों ने अपनी गलती महसूस की । इस बुरी घटना की खबर विलायत तक भी

पहुँची। ब्रिटिश सरकार ने आज्ञा दी कि हमला करने-वालों पर मुकदमा चलाया जाय।

नेटाल के बड़े न्यायाधीश ने गांधीजी को बुलाया।

"मुझे आज्ञा मिली है कि मैं जो कुछ कर सकूँ, करूँ; ताकि आपको न्याय मिले। मैं अपनी ओर से यह कह सकता हूँ कि मुझे इस घटना से बड़ी शर्म आयी। मुझे कल्पना भी नहीं आयी कि मेरे देशवासी ऐसा व्यवहार करेंगे। उन्होंने अपना आत्मगौरव बिलकुल खो दिया। इससे मुझे बड़ा दुःख है। गांधीजी, आप अपनी शिकायत पेश कीजिये।"

गांधीजी ने उत्तर दिया: "इन प्रेमभरे शब्दों के लिए मैं आपका हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। लेकिन मुझे कुछ नहीं करना है। मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं इस सम्बन्ध में कुछ न करूँगा।"

बच्चो, तुमने इसका कारण समझ लिया न? गांधीजी अच्छी तरह समझते थे कि वास्तव में यह भीड़ अपने बुरे कर्मों के लिए जिम्मेदार न थी। हर देश में, हर युग में भीड़ छोटे बच्चों की तरह होती है। उसमें विवेक नहीं होता। जिस प्रकार एक छोटा बच्चा अपनी माँ पर विश्वास करता है, उसी प्रकार भीड़ भी अपने नेताओं पर विश्वास करती है। यदि किसी छोटे बच्चे ने अपनी माँ के कहने से कोई बुरा काम किया हो, तो क्या तुम उस छोटे बच्चे को सजा दोगे? ● ● ●

अहिंसा का व्यावहारिक रूप : २ :

बोअर-युद्ध

नेटाल में गांधीजी बहुत से अंग्रेज स्त्री-पुरुषों से अच्छी तरह परिचित हो गये थे। उन लोगों का उन पर बड़ा स्नेह भी हो गया था। बाद को उनमें से कुछ लोग उनके पक्के साथी बन गये थे और उन्होंने बड़ी-से-बड़ी विपत्ति के समय भी गांधीजी का साथ न छोड़ा। वे अपने साथियों से बार-बार इस बात की चर्चा करते थे कि नेटाल के अंग्रेज भारतीय लोगों को क्यों सहन नहीं कर सकते हैं?

"सुनिये गांधीजी" लोग कहते : "आपके जो देश-वासी नेटाल में आये हैं, वे केवल धन कमाने के लिए यहाँ आये हैं। विलायत का हित-चिंतन उनका काम नहीं है।"

गांधीजी कहते : "यह गलत बात है। आप उन्हें तुच्छ समझकर उन्हें 'कुली' कहते हैं। यद्यपि वे शिक्षित नहीं हैं, फिर भी अंग्रेजों के विरुद्ध वे कोई शिकायत नहीं करते, हालाँकि उनके साथ अंग्रेजों का व्यवहार अच्छा नहीं है। मुझे पक्का विश्वास है कि अगर विलायत खतरे में पड़ जाय, तो मेरे देशवासी उनके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ाई में शामिल होंगे।"

लेकिन उनके मित्र उनकी बातों पर विश्वास नहीं करते थे।

"आप लोग अंग्रेज नागरिक हैं। लड़ाई के युग में विलायत आपकी रक्षा इतनी अच्छी तरह करता है, जितनी विलायत के नागरिकों की। लेकिन आप लोग उसकी मदद के लिए क्या करते हैं? जहाँ तक स्वामि-भक्ति का प्रश्न है, हमें आप पर पूरा विश्वास है—लेकिन हमारे देशवासी समझते हैं कि हमारे देश में आग लगेगी, तो आप लोग हाथ पर हाथ धरकर देखते रहेंगे, देश को राख होने देंगे। आप लोग हमें बचाने के लिए अपनी छोटी अँगुली भी नहीं हिलायेंगे।"

जब बोअर-युद्ध शुरू हुआ, तब अंग्रेजों का यही विचार था। तमाम अंग्रेज पलटन में भरती होकर चले गये थे। बोअरों ने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये। वीर होते हुए भी अंग्रेज कुछ न कर पाये। वे बड़ी नदी में तिनके की तरह बह गये।

इस समय गांधीजी ने अपने हिन्दुस्तानी साथियों को बुलाकर उनसे कहा: "भाइयो! अंग्रेज लोग इस समय संकट में पड़ गये हैं। जब हम लोगों पर दुःख पड़ता है, तो हम उनसे कहते हैं कि तुम हमें भाई की तरह मानो। क्या इस समय हम हाथ पर हाथ धरे चुप रह जायँ?"

भारतीयों ने कहा : "हम लड़ाई में भाग नहीं लेना चाहते।"

गांधीजी ने उत्तर दिया : "मैं भी लड़ाई नहीं लड़ना चाहता। मैं किसीका नुकसान नहीं करना चाहता। लेकिन एक बात और है। हर रोज सैकड़ों घायल पहुँचते हैं। सारे शहर का वातावरण जहरीला हो जाता है। अंग्रेज लोग सब मोर्चे पर हैं। उनके घायलों की देखभाल के लिए कोई नहीं रह गया है। भाइयो, हमें दुनिया को दिखलाना है कि हम कायर नहीं हैं। हम दुनिया के दुःख को दूर करने में मदद देना चाहते हैं।"

जब गांधीजी ने उन्हें इस प्रकार से समझाया, तब सब लोग हाथ उठाकर चिल्लाने लगे : "चलें, हम लोग घायलों की सेवा करने चलें।" गांधीजी ने तुरत अंग्रेज सरकार को लिख दिया कि "हम आपकी मदद करना चाहते हैं। बीमार और घायलों की सेवा करने के लिए हम तैयार हैं।"

थोड़े ही दिनों के बाद ग्यारह सौ भारतीय व्यापारी-किसान-मजदूर स्वयंसेवक बनकर मोर्चे पर जाने के लिए डरबन से रवाना हुए।

थोड़े ही दिनों में स्वयंसेवकों के सामने एक बड़ी कठिन परिस्थिति पैदा हुई। कभी-कभी बहुत बुरी तरह से घायल लोगों को तीस मील से ज्यादा कन्धे पर लादकर ले चलना पड़ता था। उनको डोली में उठाकर दवाई देते

हुए बिना रुके जाना पड़ता था। उन पर अंग्रेजों का विश्वास पैदा हुआ। उन्होंने पूछा: "क्या आप खतरे की जगह तक भी जाने को तैयार हैं?" गांधीजी और उनके साथी बहुत खुश हुए।

हाँ, इस प्रकार अंग्रेजों को यह अनुभव हो गया होगा कि हम डरपोक नहीं हैं। हम यदि लड़ाई में भाग लेना नहीं चाहते, तो इसलिए कि यह हमारे सिद्धान्त के विरुद्ध है, लेकिन हम मृत्यु से नहीं डरते!

इस युद्ध के दर्मियान भारतीयों के साथ अंग्रेजों का वर्ताव बहुत अच्छा रहा। किसीने उन्हें अपमानित नहीं किया। इन अंग्रेजों में कितने ही ऐसे लोग थे, जिन्होंने दंगे में भाग लिया था; लेकिन भारतीयों ने युद्ध-काल में घायलों की सेवा करते-करते उन पर जो प्रेम बरसाया, उसीकी वजह से उनका दिल पिघल गया। वे कभी अपनी निजी कठिनाइयों का ध्यान तक नहीं करते थे। प्रत्येक दिन घायलों की रक्षा में दस-पन्द्रह बार उन्हें मौत का सामना करना पड़ता था।

एक छोटे-से शहर में अंग्रेज लोग सुरक्षित थे। बोअर लोगों ने आकर अपनी तोपें लगायीं, जिससे वहाँ का किला टूट गया। बोअर लोगों ने शहर पर हमला बोल दिया। मकान गिरने लगे। बेचारे जितने लोग सड़कों पर घूम रहे थे, सबके सब ढेर हो गये।

इस शहर के सेनापति के पास एक भी तोप नहीं थी, जिससे वह हमला रोक पाता। केवल एक ही उपाय रह गया था। वह यह कि एक आदमी ऐसा हो, जो एक पेड़ पर बैठकर बराबर उस तोप को देखता रहे। उसके हाथ में एक घंटा रहे। तोप से निशाने तक पहुँचने में बम को एक-दो मिनट लगते ही हैं। वह जब भी तोप का विस्फोट देखे, तभी घंटा बजा दे, ताकि लोगों को छिपने का अवसर मिले।

यह बड़ा खतरनाक काम था, क्योंकि वह आदमी शत्रुओं के सामने बिलकुल खुला पड़ जाता!

अच्छा, तो घंटा बजाने की जिम्मेदारी किसने ली? एक गरीब हरिजन भाई ने, जिसे अभी तक सब लोग तुच्छ समझते थे। लेकिन यह साबित हुआ कि हरिजन के चिथड़ों के अन्दर कायर का नहीं, वरन् वीर का हृदय छिपा हुआ है।

उस युद्ध के बीच बार-बार समाचार-पत्रों में भारतीय लोगों के साहस के वर्णन छपते रहते थे। उन्हें सैंतीस उपाधियाँ मिलीं और विलायत की सरकार ने उन्हें बधाई दी। उस छोटे शहर के सेनापति ने उस वीर हरिजन के बारे में कहा: "वह एक बार भी घंटा बजाना नहीं भूला था। हमारा शहर अन्तिम क्षण तक उसका आभारी रहेगा।"

अनपेक्षित सहयोग

कुछ दिन के लिए अंग्रेज लोग भारतीय लोगों के प्रति अपनी पुरानी शिकायतें भूल गये। कई महीने बीत गये। गांधीजी डरबन छोड़कर जोहान्सबर्ग में रहने लगे। उनके साथ चार मंत्री काम करते थे। वे उनके प्रति अपने पुत्र की तरह व्यवहार करते थे। लेकिन अब काम बढ़ गया था। गांधीजी को एक स्टेनोटाइपिस्ट खोजना पड़ा। एक बीस वर्ष की युवती उनसे मिलने आयी। वह बोली :

"मेरे मन में भारतीयों के प्रति कोई बुरी भावनाएँ नहीं हैं। मैं आपके कहे अनुसार काम करूँगी।" फिर गांधीजी ने उसे काम पर रख लिया। थोड़े दिनों में वह उनका दाहिना हाथ सिद्ध हुई। गांधीजी उसके साहस और स्वामि-भक्ति को कभी भूल न सके।

"मैं नौकरी के लिहाज से नहीं आयी हूँ। मैं आपके आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए आयी हूँ।" ऐसा कहती हुई वह रात-दिन काम पर लगी रहती थी। बाद में जब गांधीजी कैद हो गये, तो उसी लड़की ने आन्दोलन चलाया। उसका नाम था—कुमारी श्लेसिन।

ऐसी कितनी ही बहनों और भाइयों ने उस आन्दोलन को बढ़ाने में सहायता दी।

महामारी में सेवा

बच्चो, तुम जानते हो कि दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों को 'कुली' कहते थे। अंग्रेजों की दृष्टि में सब भारतीय जन 'कुली' थे, सब तुच्छ थे। ये जितने अधिक गरीब थे, उतने ही अधिक तुच्छ भी।

इसीलिए जोहान्सबर्ग में भारतीय कुली एक बहुत गन्दे मुहल्ले में सटे हुए रहते थे। गोरे लोग उधर की स्वच्छता के बारे में जरा भी चिन्तित न थे। उधर एक बार प्लेग का प्रकोप हुआ। तेईस व्यक्तियों को, जो जोहान्सबर्ग की खानों में काम करते थे, यह बीमारी हब्शी कुलियों से लगी। ये एक भयंकर बीमारी लेकर अपने घरों को वापस लौटे। गांधीजी के एक साथी को अचानक यह समाचार मिला। उन्होंने शीघ्र ही गांधीजी को इसकी सूचना दी :

"जल्दी कीजिये। यदि हम शीघ्र ही कुछ तैयारी न कर लेंगे, तो हमें व्यर्थ ही रोना-धोना पड़ेगा।"

गांधीजी अपनी साइकिल पर बैठकर चले गये। उनके साथ उनके मित्र एक अंग्रेज डॉक्टर भी चले। लेकिन तीन व्यक्ति तेईस मरीजों की देखभाल कैसे कर सकते थे? गांधीजी ने अपने मंत्रियों को बुलाया। "क्या आप लोग हमें मदद दे सकेंगे? क्या आप अपने प्राणों का कुछ भी मोह न करेंगे?"

"हाँ, हम लोग तैयार हैं। जहाँ आप चलने को कहेंगे, हम आनन्दपूर्वक जायेंगे।" वे बोले।

वह रात कितने दुःख से कटी ? इन बेचारे मजदूरों को बड़ा कष्ट हुआ। उनकी देखभाल करनी पड़ी, उनके दर्द को कम करने के प्रयत्न में दवा देनी पड़ी। उनके बिस्तर साफ रखने की कोशिश करनी पड़ी।

दूसरे दिन रोगियों को रखने के लिए नगरपालिका ने उन्हें एक गोदाम दिया। परन्तु वह गोदाम बहुत गन्दा था। उसमें झाड़ू देनी पड़ी। वह सब काम अपने ही हाथ से करना पड़ा। नगरपालिका ने एक नर्स भी दी, लेकिन गांधीजी को उस पर बड़ा तरस आया। उन्होंने उसे कुछ भी काम करने नहीं दिया। कुछ दिनों बाद वह भी चल बसी। ऐसी सेवा के बावजूद बीस मरीज मर गये।

तब गांधीजी ने समाचार-पत्रों में इसकी कड़ी आलोचना की : "इस घटना का दायित्व नगरपालिका पर है। 'कुली मुहल्ले' के लिए उसने कभी भी एक पैसा खर्च नहीं किया। हमारे मजदूर लोग वहाँ बदबूदार जगह में धुँए के बीच रहते हैं। इसलिए इस दुर्घटना का दायित्व नगरपालिका पर है।"

गांधीजी की इस बात का अच्छा प्रभाव पड़ा। नगर-पालिका ने कुल मुहल्लों को जलाने की आज्ञा दी। प्लेग रोकने के लिए सारे शहर में सुव्यवस्था की।

इस समाचार के प्रकाशित होने पर गांधीजी को एक नया मित्र मिला। वह एक युवक अंग्रेज पत्रकार था। वह उनसे मिलने आया। उसने कहा :

"आपका आन्दोलन मुझे बहुत पसन्द आया। मैं आपके साथ काम करना चाहता हूँ। क्या आप मुझे अपने साथ रखेंगे ?"

गांधीजी की भावना उमड़ आयी।

गांधीजी के साथियों में से किसीको प्लेग नहीं हुआ, ऐसा क्यों ? सम्भव है, यह उनके संयमी जीवन की वजह से हुआ। जब तक वे रोगियों की सेवा में लगे थे, तब तक गांधीजी ने किसीको भी शाम को भोजन नहीं करने दिया। वे दिन में एक बार ही भोजन करते थे। वह भी बहुत हल्का भोजन होता था (चावल और फल)। शाम को वे केवल नीबू का रस लेते थे।

देखो, संयम से रहना विपरीत परिस्थितियों में कितना लाभदायक है ! इस प्रकार वे लोग प्लेग से बच गये और यही बीमारी उनके बीस रोगियों को ले बैठी।

पत्रिका का प्रारम्भ

गांधीजी को फिर एक बार विलायत की सरकार से बधाई मिली। "धन्यवाद ! आप लोगों ने बड़े साहस से काम लिया।"

लेकिन ये लोग समझते थे कि उन्होंने केवल अपना कर्तव्य मात्र पूरा किया। गांधीजी अभी सोचते थे कि उन्हें अपने देशवासियों के अधिक सम्पर्क में आना चाहिए। यदि उन्हें सरलता से उनसे मिलने का मौका मिल जाय, तो अच्छा हो। इससे वे उनके दुःखों को और गहराई से जान पायेंगे और अधिक शक्ति से संघर्ष कर सकेंगे। प्रत्येक प्रश्न पर उनके साथ बातचीत कर लेना आवश्यक था।

गांधीजी अच्छी तरह समझ रहे थे कि उनके साथी सही मार्ग पर चलना चाहते हैं। उनका हृदय निर्मल था, लेकिन आवश्यक ज्ञान न था। इसलिए उन्हें तैयार करना उनका और उनके साथियों का कर्तव्य था। एक समाचार-पत्र की आवश्यकता थी, जिससे वे हर बात की जानकारी प्राप्त कर सकें। उनके मित्रों का भी यही विचार था। इसलिए उन्होंने काम शुरू किया और थोड़े दिनों में 'इण्डियन ओपीनियन' नामक पत्र प्रकाशित होने लगा।

उस समय से गांधीजी हर सप्ताह सब भाइयों से 'बातचीत' करने लगे। दिल खोलकर वे अपनी आशाएँ और डर प्रकट करने लगे। वे उनको कहानियाँ भी सुनाते थे, उनको धर्म भी सिखलाते थे। वे स्वच्छता एवं संयम की भी शिक्षा उन्हें देते थे। पाठक भी उनको लम्बे-लम्बे

पत्र लिखते थे। ये उनके सामने अपनी समस्याएँ रखते थे, उनकी सलाह माँगते थे। उनके साथ चर्चा और वाद-विवाद भी करते थे। गांधीजी के कार्यालय में ढेर पत्र आने लगे। वे समझने लगे कि उन्होंने एक बड़ी भारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ली है। वे सबके गुरु बन गये। गुरु का कार्य वहन करना कठिन होता है। गुरु को बड़ा महान् आदमी होना चाहिए। हम सारे जीवन के मार्ग-दर्शन के लिए उसे चुन लेते हैं। उसे अपने उदाहरण से, अपने निजी जीवन से ही शिक्षा देनी होती है। इसलिए कोई भी बात लिखने के पहले गांधीजी बड़ी गहराई से सोच-विचार करते थे। वे इस बात की कोशिश करते थे कि वे एक भी ऐसा शब्द न लिखें, जो बिलकुल सच न हो या जो पूर्ण रूप से सत्य न हो। अत्युक्ति से उन्हें घृणा थी। इसके सिवा वे कभी अपने ग्राहकों की खुशामद नहीं करते थे। वे निष्पक्ष और दूरदर्शी होने का प्रयत्न करते थे। वे बड़े जोरदार शब्दों में लिखते थे। लेकिन प्रयत्न यही करते थे कि इससे किसीको बुरा न लगे। उन्हें अपने बचपन की एक धाय की कहानी याद आती थी, जो कहा करती थी कि परमात्मा इतना बड़ा है कि पृथ्वी और आकाश तक में नहीं समा सकता; लेकिन वह हमारे हृदयों में वास करता है। इसलिए कभी कटु वचन नहीं बोलना चाहिए।

फिनिक्स आश्रम की स्थापना

अब गांधीजी समझने लगे थे कि पत्रकारों के हाथ में बड़ी शक्ति होती है। यदि उनके विचार शुद्ध न हों, यदि उन्हें रुपयों का लालच हो, तो वे अपने देश को बहुत हानि पहुँचा सकते हैं। इसलिए उन्होंने अपने जीवन को सीधा और सरल बनाने का निश्चय किया, ताकि वे अपनी नयी जिम्मेवारी अच्छी तरह निभा सकें। उन्होंने अपने साथियों से कहा :

"हम यदि भारतीय संस्कृति के विचार देहात में ले जायँ, तो कैसा हो? हम खेती का काम करके अपनी जीविका ईमानदारी से कमा सकेंगे। हम अपने बचे समय को अपने अखबार को छापने में लगायेंगे।" उनके मित्रों ने उनकी बात मान ली।

थोड़े दिनों में उन्होंने एक छोटा-सा क्षेत्र (फार्म) मोल लिया। उसमें बहुत-से फलों के पेड़ थे। एक छोटी-सी पानी की नहर भी थी तथा एक छोटा-सा टूटा-फूटा मकान भी।

एक मित्र ने मकान बनाने का सामान भी उन्हें दे दिया। गांधीजी ने कुछ ऐसे बढ़इयों को भी बुलाया, जो बोअर-युद्ध के समय उनके साथ काम कर चुके थे। एक सप्ताह में उनका कारखाना बनकर तैयार हो गया।

गांधीजी ने अपने सम्बन्धियों और मित्रों को भी बुलाने का प्रयत्न किया। परन्तु यह कितना कठिन काम था! उन्होंने अपनी मातृभूमि किसलिए छोड़ी थी? रुपये कमाने की ही आशा में न! इतना कष्ट तो उन्होंने सहन किया, फिर और अधिक कष्ट सहने के लिए उनसे कहा गया! गांधीजी के साथ श्रम करो! कैसी विचित्र बात थी यह! अथक परिश्रम, मनोरंजन कुछ नहीं! और सम्मिलित जीवन! गांधीजी ने उनसे कहा :

"भाइयो, हमारे साथ आओ। आपका जीवन सादा और सुन्दर बनेगा। अपमानजनक व्यवहार से आप बचेंगे तथा आत्मसम्मान से रहेंगे। आपका जीवन सरल होगा। लेकिन आप स्वतंत्र तो रहेंगे।"

इस कठिन प्रयोग में गांधीजी को रूस में रहनेवाले महात्मा टॉल्स्टॉय से बड़ी प्रेरणा मिली।

बच्चो, तुमने अवश्य ही रूस के उस बड़े जमींदार का, उस प्रसिद्ध लेखक का नाम सुना होगा, जिसने अपने चारों ओर रहनेवाले दुखियों और दीनों के दुःख को मिटाने के लिए आराम की जिन्दगी और अपना धन त्याग दिया। टॉल्स्टॉय, जो काफी वृद्ध भी हो चुके थे, अपने सम्बन्धियों, अपने परिवार, अपने बाल-बच्चों, अपनी पत्नी को छोड़ बर्फ और तूफान के बीच निकल पड़े। वे अपने अन्तर की पुकार को दबा नहीं सके।

"यह विलासमय जीवन तुम्हें सत्य की ओर नहीं ले जायगा। तुम सरल जीवन की ओर बढ़ो। एक ऐसे जीवन की ओर बढ़ो, जो मनुष्य के लायक हो।"

जिस टॉल्स्टॉय ने रूस की हिमाच्छादित भूमि में जो करना चाहा, वही गांधीजी अफ्रीका की कड़ी धूप में करना चाहते थे। उन्होंने एक आदर्श क्षेत्र का संगठन किया। उन्होंने अपने किसानों के बच्चों के लिए एक पाठशाला भी खोली।

टॉल्स्टॉय भी सब प्राणियों पर प्रेम करते थे। उन्होंने दूसरों को कष्ट देने के बजाय स्वयं कष्ट उठाना अच्छा समझा। एक दिन एक बड़ी जमींदारिन को भोजन करने का निमन्त्रण था। टॉल्स्टॉय ने आज्ञा दी कि "उनके लिए मांस न बनाया जाय। रोज जो भोजन बनता है, वही बने।"

"लेकिन वे मांस बहुत पसन्द करती हैं; विशेषकर मुर्गी का।" उनकी पत्नी ने कहा।

"वे पेट भरकर मुर्गी खायें" टॉल्स्टॉय ने कहा: "बहन, यदि आप मुर्गी खाना चाहती हैं, तो चाकू लेकर उसे मार दीजिये; क्योंकि यहाँ पर कोई भी आदमी ऐसा काम करने को तैयार नहीं है।"

मुर्गी खाने का इतना शौक होते हुए भी उस महिला

को मुर्गी मारने का साहस नहीं हुआ। टॉल्स्टॉय बहुत देर तक उस पर हँसते रहे।

गांधीजी की पत्नी, उनके बच्चे और उनके थोड़े से मित्र उनके पहले आश्रमवासी हुए। उन्होंने वहाँ की जमीन कई हिस्सों में बाँट दी। धीरे-धीरे उनका जीवन स्थिरता पाने लगा।

दिनभर काम करने के पश्चात् शाम को ये लोग इकट्ठे होते थे। तब ये कहानियाँ सुनते थे या गाना गाते थे या शान्तिपूर्वक ध्यान करते थे।

धीरे-धीरे शान्ति और श्रम का जीवन बिताकर नयी आध्यात्मिक शक्तियाँ पैदा हुई—उनकी आत्मा अपने चारों ओर के दलदल से कमल की तरह ऊपर उठने लगी।

इस प्रकार गांधीजी का पहला आश्रम फिनिक्स में स्थापित हुआ।

प्रथम सत्याग्रह : ३ :

अत्याचारी कर

ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तान से मजदूरी की खोज में जानेवाले कुलियों के खिलाफ एक कानून बनाया था कि हर हिन्दुस्तानी को फिर वह पुरुष, स्त्री, बच्चा—चाहे जो हो, साल में तीन पौंड का कर देना पड़ेगा। यह सर्वथा अमानुषिक बात थी। सरकार ने हिन्दुस्तानियों पर एक तरह की गुलामी लाद दी थी।

अपने 'इण्डियन ओपीनियन' नामक अखबार में गांधीजी ने इस कानून का कड़ा विरोध किया और इसे रद्द करने की माँग पेश की। हिन्दुस्तान में भी नेताओं ने इसका कड़ा विरोध किया। आखिर ब्रिटिश सरकार अपनी गलती समझ गयी। सरकार की तरफ से सेनापति स्मट्स ने पक्का वादा किया कि यह कानून रद्द कर दिया जायगा।

फिर अंग्रेजों की एक बैठक में उसी सेनापति स्मट्स ने कहा : "मेरी सरकार अपनी बात को वापस लेती है। तीन पौंडवाला कर रद्द नहीं हो सकता।"

अफ्रीका में रहनेवाले गोरों ने उस कर के रद्द करने का विरोध किया। सरकार ने गोरों को खुश करने के लिए

अपना वादा तोड़ दिया। अंग्रेजों की धोखेबाजी से हिन्दुस्तानियों को बड़ा धक्का लगा। इससे उनका खून खौल उठा। यह भारत के लिए अपमानजनक बात थी। वे भी हाथ पर हाथ धरकर बैठे नहीं रह सकते थे।

गांधीजी ने अपनी पत्नी और साथियों से पूछा कि अब हमें क्या करना चाहिए? विलायत के लोग इतना धोखा दे रहे हैं, तो हमें उसका विरोध करना चाहिए। लेकिन कैसे? लड़ाई से? यह असम्भव था और ऐसा करने की इच्छा थी भी नहीं। लेकिन इससे भी अच्छा शस्त्र उनके पास था।

अभी तक ये लोग बराबर ब्रिटिश सरकार की सहायता करते आ रहे थे। संकट के जमाने में उन्होंने बराबर उसका साथ दिया। उन्हें बधाइयाँ और तगमे भी मिले थे। उन्होंने उन्हें इसलिए स्वीकार किया कि उस सरकार पर उन्हें भरोसा और विश्वास था। पर इस समय सरकार की धोखेबाजी स्पष्ट ज्ञात हुई। अब उनका कर्तव्य था कि ये ब्रिटिश सरकार से पूरा सम्पर्क तोड़ दें।

"भाइयो, अभी सब काम बन्द करो। सब सरकारी नौकरियाँ छोड़ दो। हम ऐसी सरकार का साथ नहीं देना चाहते, जो अपना वादा तोड़ देती है।" गांधीजी ने अपने साथियों से इस प्रकार की बातें कीं।

ये लोग कायर तो थे नहीं। धीरे-धीरे शान्ति से,

लेकिन सतत प्रयत्न से इन्होंने एक शान्ति-सेना खड़ी करनी शुरू की। वह सेना ऐसी थी, जो अहिंसा के द्वारा ही अंग्रेजों की हिंसा का सामना करने को तैयार हो रही थी। अहिंसा में इस्पात से भी ज्यादा शक्ति है।

धीरे-धीरे शान्ति से, बिना शोरगुल के उन्होंने संघर्ष की तैयारी कर ली। अब समय आ गया था। अंग्रेज उन्हें जेल में डाल सकते थे। उन्हें पीट सकते थे। वे उन्हें गोली मार सकते थे। लेकिन वे उन्हें काम करने को या सहयोग देने को मजबूर नहीं कर सकते थे।

अत्याचारी कानून

लगभग उसी समय एक दूसरी घटना घटी। दक्षिण अफ्रीका में रहनेवाले हिन्दुस्तानी ज्यादातर गृहस्थ थे। उनमें से कुछ लोग अपने परिवार साथ ले आये थे। कुछ ने वहाँ पर आकर शादी भी कर ली थी। लेकिन उनकी शादी की कोई कानूनी कार्रवाई नहीं होती थी। वे घर में पंडित और मित्रों के सामने अपनी शादी सम्पन्न करते थे।

उन दिनों एक मुकदमे पर उच्च न्यायालय में अजीब-सा फैसला हुआ था कि "दक्षिण अफ्रीका में ईसाई रीति से हुए विवाह ही वैध हैं, बाकी सब विवाह अवैध हैं।"

इस प्रकार एक न्यायाधीश की मर्जी से भारतीय

लोगों के सभी विवाह अवैध घोषित कर दिये गये। स्त्रियों के पति न रहे। बच्चों के बाप न रहे। इस तरह की एक अजीब चीज इतिहास में हुई।

सब स्त्री-पुरुषों ने इस बात का विरोध किया।

अहिंसा के पथ पर

गांधीजी ने सोचा कि विलायत की सरकार सचमुच हम पर बड़ा अन्याय कर रही है। अब समय आ गया है कि हम अंग्रेजों को दिखला दें कि हमारी अन्तरात्मा स्वतन्त्र लोगों की-सी है, दासों की-सी नहीं है। इसके पूर्व हमें अपने हृदयों से द्वेष-भाव निकालना है। उसके बाद हम लोग अपना संगठन बनाकर सरकार से लड़ना आरम्भ करें। हम सत्याग्रह द्वारा उनसे लड़ेंगे। यह शस्त्र लोहे से ज्यादा मजबूत है, इस्पात से अधिक शक्तिशाली है। हम हाथ में शस्त्र लेकर उन्हें मार सकते हैं, लेकिन हम ऐसा करना नहीं चाहते। जब प्राण दे नहीं सकते, तो हम प्राण लेंगे भी नहीं।

गांधीजी ने अपने साथियों से कहा : "भाइयो! हम सबको मालूम होना चाहिए कि अहिंसा हिंसा से श्रेष्ठ है। क्षमा में वह शक्ति है, जो दण्ड में नहीं है। इसलिए हम वीर लोगों का शस्त्र क्षमा ही होगा।"

तब किसी एक ने आपत्ति करते हुए कहा : "ऐसा करने से क्या लोग हमें कायर नहीं समझेंगे?"

और मित्र भी दुविधा में पड़े कि दूसरे लोग हमें अवश्य कायर समझेंगे।

फिर गांधीजी ने कहना शुरू किया : "यदि हमारे बीच में कोई कायर हो, तो वह कृपा करके चला जाय। अहिंसा बलिदान चाहती है। अहिंसा वीरों की माँग करती है। अहिंसा का मतलब यह नहीं है कि चुपचाप अत्याचारियों के सामने दब जायँ। एक शक्तिमान् शस्त्र के रूप में अहिंसा अत्याचारियों का सामना करती है। लेकिन प्रेम से और अटल हृदय से अहिंसा अत्याचारी की तलवार का सामना करती है।"

गांधीजी ने उन्हें इस प्रकार क्यों समझाया था? क्योंकि उन्हें मालूम था कि एक व्यक्ति की कमजोरी सारे साम्राज्य में घर कर सकती है। एक ही व्यक्ति की सच्ची आवाज से दुनिया काँप उठती है।

बहनों की वीरता

फिर स्त्रियों तक ने कहा : "आप जैसा कहें, हम भी करने के लिए तैयार हैं।"

गांधीजी को कोई आश्चर्य न हुआ। स्त्रियाँ शान्ति से चुपचाप बलिदान होना जानती हैं। उनमें नम्रता, श्रद्धा और विवेक होता है। वे सबसे कमजोर नहीं, बल्कि सबसे

महान् और उदार हैं। फिर भी गांधीजी को उनकी बड़ी चिन्ता थी, क्योंकि वे वहुत कोमल होती हैं।

उन्होंने पूछा : "वहनो! क्या तुम लोग जेल जाने को तैयार हो?"

"हाँ।" उन्होंने उत्तर दिया।

"क्या मजदूरों की तरह काम भी कर सकोगी?"

"हाँ, हम तैयार हैं।"

"यदि इस आन्दोलन में तुम्हें प्राण भी त्यागना पड़े, तो क्या तुम्हें दुःख न होगा?"

"नहीं।"

महिलाओं ने ऐसे उच्च मार्ग को अपनाया। इस आन्दोलन की पूरी कहानी कहना कठिन है। ये वहनें लम्बे-लम्बे दौरे करती रहीं। पत्थरों और कङ्कड़ों से उनके पाँव कट जाते थे। धूप की गर्मी और प्यास के मारे उनका शरीर मुरझा जाता था। लेकिन वे आगे वढ़ती गयीं।

आखिर में ये खानों तक पहुँचीं। यह उनका लक्ष्य था। खानों में पहुँचकर उन्होंने अपने मजदूर भाइयों को पुकारा : "भाइयो! हम लोगों का जीवन वड़े दुःख से वीत रहा है। काम करना छोड़ दो। खानों को छोड़ दो। हमारी मदद करने आओ।"

मजदूरों का हृदय पिघला। उन्होंने सोचा कि हमारी वहनों ने कितना कष्ट उठाया। उन्होंने अपना काम छोड़

दिया। धीरे-धीरे सब हिन्दुस्तानी मजदूरों ने अपना काम करना छोड़ दिया। चारों ओर से पुरुष और महिलाएँ अपने बच्चों को गोद में लेकर उनके पास आये।

"हम भी आपके साथ ही मरने को आये हैं।" गांधीजी ने उन्हें भी प्रेम और अहिंसा का पाठ पढ़ाया।

लेकिन गोरे लोग और भी बिगड़े। वे महिलाओं को पकड़कर जेलों में डालने लगे। जेलों में एक मिनट के लिए विश्राम नहीं मिलता था। उन्हें दिनभर कठिन परिश्रम करना पड़ता था। वहाँ महिलाओं का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा था। कुछ महिलाएँ मर तक गयीं। लेकिन उन्होंने आह तक नहीं की।

एक दिन गांधीजी ने सुना कि प्यारी वलि अम्मा अब बचनेवाली नहीं है। वे उसके पास गये। वह बहुत नम्र और प्यारी थी। गोरों ने उसे कैद किया था। महीनों तक वह एक अँधेरी कोठरी में रखी गयी थी। न वह अच्छा मौसम देख सकती थी, न सूर्य, चाँद और तारे ही। उसका कोमल शरीर उन कष्टों को नहीं सह सका।

मृत्यु से कुछ दिन पहले जेल से वह रिहा कर दी गयी। लेकिन छोटी वलि अम्मा अपनी उस रिहाई से क्या करती? वह तो अब परलोक के रास्ते पर थी।

उसके बिस्तर के पास जाकर गांधीजी ने उसके हाथ

पकड़कर पूछा : "प्यारी छोटी बहन बलि अम्मा ! क्या तुम जेल जाने की वजह से पछता रही हो ?"

वह आश्चर्य से मुसकरायी !

"बापू, क्यों पछताऊँ ?"

"लेकिन, छोटी बलि अम्मा ! अब तुम हमें छोड़कर जा रही हो। तुम इतनी छोटी हो !"

"बापू, इसमें क्या है ? यदि मेरे दो प्राण भी होते, तो फिर भी अपने भाइयों की तकलीफें दूर करने के लिए मैं बड़ी खुशी से उन्हें त्याग देती।" प्यारी शान्त बलि अम्मा ने यह उत्तर दिया। उसका नाम भुलाया नहीं जा सकता। बड़े प्रेम और श्रद्धा से उसका नाम लिया जायगा। वह वीर थी, वह सैनिक थी न !

सत्याग्रह का चमत्कार

जेलें भर गयी थीं।

अब अंग्रेजों ने मजदूरों को खानों में बन्द करना शुरू किया। वे उन्हें जबरन नीचे सुरंगों में भरने लगे। अशिक्षित जमादार उन्हें पीटते थे, गाली देते थे। ये बेचारे बड़े धैर्य से सब कुछ सह लेते।

"हम आपको किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचाना चाहते। हम सिर्फ न्याय माँग रहे हैं।"

बलवान् और शक्तिशाली सरकार ने एक बड़ी गलती

की। न्याय देने के बदले वह अपने सबसे अच्छे और सबसे अधिक स्वामिभक्त बच्चों के साथ ठीक व्यवहार नहीं कर रही थी।

सत्याग्रह का आन्दोलन दिन-दिन बढ़ता गया। ब्रिटिश सरकार ज्यादा-से-ज्यादा बिगड़ती गयी। वह सीमा से भी बाहर चली गयी। तीन बार उसने गांधीजी को अपने साथियों से अलग किया और उन्हें जेल में डाल दिया। उनके और साथी भी बारी-बारी से जेल जाते रहे। लेकिन सत्याग्रहियों ने हिम्मत न हारी। पारस्परिक विश्वास बढ़ता गया। सबने शान्त और दृढ़ रहने का आश्वासन दिया।

गोरी घुड़सवार पलटन देश में दौरा करती रही। वह हिन्दुस्तानी लोगों को जबरन काम में लगाती थी। यदि कोई हिन्दुस्तानी उसका विरोध करने की हिम्मत करता, तो उसे गोली से उड़ा दिया जाता था। लेकिन ये लोग जितना ही ज्यादा सताये जाते, उतनी ही ज्यादा हिम्मत दिखलाते थे।

उसी दरमियान सोराबजी नामक एक पारसी युवक ने अपनी हिम्मत से हिन्दुस्तानी मजदूरों के एक दल की रक्षा की। विलायती सेनापति ने जबरदस्ती उन मजदूरों से काम करवाना चाहा। मजदूर इस बात को मान नहीं रहे थे। तब सेनापति ने अपने सिपाहियों को गोली चलाने

की आज्ञा दी। सोराबजी ने सोचा कि इतने वीर श्रमिकों को मरने नहीं दिया जा सकता। दौड़कर उसने सेनापति के घोड़े की लगाम पकड़ ली।

"रुकिये।" उसने कहा।

"तू क्या चाहता है? पीछे हट!"

"रुकिये, मैं शान्ति से उन आदमियों को काम करने को राजी करूँगा।"

सेनापति घृणा और तिरस्कार से मुसकराया। सोराबजी ने श्रमिकों को समझाया। युवक के प्रेमभरे वचनों में वह शक्ति थी, जो सेनापति की बन्दूक में नहीं थी।

उत्तर और दक्षिण से रोज नये-नये सत्याग्रही आते रहे।

अनोखी अहिंसक पलटन दिन-दिन बढ़ती गयी। छोटे-छोटे गाँवों में अब उनके लिए जगह नहीं थी। लेकिन मौसम अच्छा था। रात को आकाश में तारे उनके पहरेदार बनते थे।

ये लोग गाँवों और शहरों के बीच से गुजरते थे। हिन्दुस्तानी बनिये उन्हें खाने के लिए अनाज दिया करते थे। कोई चावल, कोई दाल, तो कोई अचार देता। लोगों ने उन्हें खाना बनाने के बड़े-बड़े बर्तन भी दिये। ये बारी-बारी से खाना बनाते थे तथा सभी प्रलोभनों से बचने का

प्रयत्न करते थे। वे अपने हाथों को दूसरों के खून से अपवित्र करना नहीं चाहते थे।

अन्त में ब्रिटिश सरकार समझ गयी कि यदि हम ज्यादा मनमानी करेंगे, तो दक्षिण अफ्रीका की सारी हिन्दुस्तानी आबादी, लगभग साठ हजार आदमी काम छोड़कर गांधीजी के साथ हो जायेंगे। इससे दक्षिण अफ्रीका का व्यापार और उद्योग नष्ट हो जायगा।

सारा हिन्दुस्तान काँप उठा। सभ्य दुनिया गांधीजी की सचाई साबित करने को उठ खड़ी हुई।

एक दिन सेनापति स्मट्स ने गांधीजी को बुलाया।

"हम आपके साथ संधि करना चाहते हैं। आपका क्या खयाल है?" उन्होंने पूछा।

"यदि विलायत ने अपनी गलती समझ ली हो, तो हम दुबारा उसके साथ सहयोग करने को तैयार हैं।" गांधीजी ने कहा।

छह महीने के अन्दर ब्रिटिश सरकार ने उनकी माँगें पूरी कीं। तब बिलकुल शान्ति से, बिना किसी प्रकार के प्रदर्शन के लोगों ने काम करना शुरू किया। सत्य और अहिंसा से उन्होंने अपना पहला महायुद्ध जीत लिया।

● ● ●

साबरमती-आश्रम की स्थापना : ४ :

सन् चौदह की लड़ाई

सेनापति स्मट्स के साथ हुई बातचीत के फलस्वरूप बीस वर्ष की लड़ाई के बाद विजय हुई। दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए गांधीजी को बीस वर्ष हो चुके थे। बीस साल से वे अपने भाइयों के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाये लड़ रहे थे।

अब वहाँ से विदा लेने का समय आ गया। उन लोगों का संगठन तैयार हो चुका था। उनके लिए चिन्ता की कोई बात न थी। इधर स्वदेश में उनकी पुकार हो उठी थी।

फिनिक्स के आश्रमवासी, गांधीजी के सम्बन्धी और निकट के मित्र, सभी उनके साथ चले। उनके लिए यह एक नये जीवन की शुरुआत थी।

सन् १९१४ में ये लोग हिन्दुस्तान पहुँचे। गांधीजी की हालत अच्छी न थी। उन्हें प्लूरिसी की बीमारी हो गयी थी। उन्हें आराम और शान्ति की आवश्यकता थी।

लेकिन हिन्दुस्तान में पहुँचते ही उन्हें मालूम हुआ कि यूरोप में लड़ाई शुरू हो गयी है। रात को आँखें बन्द

किये हुए वे नींद की आशा किया करते थे, लेकिन नींद नाम को भी न आती थी। रात-रातभर वे बुरे स्वप्न देखते रहते थे और शाम के बजाय सुबह को ज्यादा थके हुए रहते थे।

लड़ाई में जानेवाले उन लाखों युवकों का उन्हें ध्यान आता था, जो बेचारे गीत गाते-गाते जाते थे।

यूरोप के युवक आग की ज्वालाओं में निगले चले जा रहे थे। इनका भविष्य क्या होगा? उनकी युवती स्त्रियाँ बीमार पड़ जायँगी। छोटे बच्चे भूखों मरेंगे। वृद्ध सड़कों पर तड़पते हुए मरेंगे।

गांधीजी अब न युवक थे और न स्वस्थ ही। लेकिन उनकी अन्तरात्मा अभी भी जाग्रत थी। वह कह रही थी:

"उठो! अपने भाइयों को मदद करने जाओ।"

तभी गांधीजी को अपना कर्तव्य सूझा। "हें! हम क्यों नहीं उन्हें गले लगाकर कह सकते कि रुको! मौत की ओर क्यों बढ़ रहे हो? खुले हृदय से एक-दूसरे से गले मिलकर अपने झगड़े भूल जाओ। तुम सब भाई ही तो हो।"

लेकिन वे तो बहरे हो गये थे। वे गांधीजी की बात सुननेवाले न थे। फिर भी तो वे घायलों की सेवा करने जा सकते थे और उन्हें कठोर मृत्यु से बचा सकते थे।

गांधीजी जल्दी ही एक हिन्दुस्तानी सेवा-दल तैयार

करना चाहते थे, जो लड़ाई के मोर्चे पर आगे बढ़कर बेचारे घायलों को बचा सके।

यह भी अन्तरात्मा की प्रेरणा थी। लेकिन सब भारतवासियों ने उस विचार का समर्थन नहीं किया। वे गांधीजी से कहने लगे :

"हम अंग्रेजों की मदद करने क्यों जायँ ? क्या आप इतनी जल्दी दक्षिण अफ्रीका की दिक्कतों को भूल गये ?"

तब गांधीजी ने क्षमा की महत्ता का दुबारा वर्णन किया। वे अपने भाइयों से कहने लगे : "क्षमा ही वीरों का रत्न है।" उनके भाई उस बात को समझने लगे।

उनका सेवा-दल तैयार हुआ। लेकिन ब्रिटेन अभी तक उन्हें पसन्द नहीं करता था।

भारत की दुर्दशा

गांधीजी को लगा कि उन बीस सालों के भीतर उनकी मातृभूमि की परिस्थिति में बहुत बड़ा अन्तर आ गया है। उन्होंने उसे अकाल से पीड़ित पाया।

हजारों आदमी शहरों में घूम रहे थे। उनके कन्धे झुके हुए थे। हाथ लटकते हुए। ये काम की खोज में फिर रहे थे। काम मिलता न था और भूख खूब सताती थी।

गाँवों में इससे भी अधिक कष्ट था। किसानों के लिए खेती का काम केवल पाँच-छह महीने ही रहता था। बरसात

में और गर्मी के दिनों में वे खेतों में काम नहीं कर पाते थे। इस प्रकार ये लोग कई महीनों तक बेकार रहते थे। ये केवल कृषि के काम से अपनी गुजर नहीं कर सकते थे। लाखों किसान दिन में सिर्फ एक ही बार भोजन पाते थे। वह भी मुट्ठीभर चावल, केवल नमक के साथ। स्पष्ट था कि वे दिन प्रतिदिन कमजोर होते जा रहे थे।

जब गांधीजी ने उन लोगों के भूखे अस्थिपञ्जर देखे, तो उन्हें उस जमाने की याद आने लगी, जब घर-घर में चरखे चलते थे।

देश की अपनी यात्राओं में गांधीजी ने देखा कि सब लोग बड़े प्रेम और सहानुभूति से उनका स्वागत करते हैं। कितने ही युवक और प्रौढ़ लोग भी उनकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हैं।

उनके उपदेश सुनने के लिए बड़ी भीड़ जमा होती थी। गांधीजी उन्हें समझाते थे कि "भाइयो ! अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए हमें संगठन करना चाहिए।"

पश्चिम घूमे हुए भाई कहते हैं कि "हमें कारखाने बनाने पड़ेंगे। हिन्दुस्तान में बहुत-सी मशीनें लानी पड़ेंगी।"

पर, गांधीजी कहते थे कि हमें अपने पूर्वजों के जीवन की ओर बढ़ना चाहिए। हमें धरती माता की ओर जाना

चाहिए, जो हमारी पालक और पोषक है। हमें चरखे को जीवित करना है। इसीमें हमारी रक्षा है।

आश्रम की स्थापना

गांधीजी को बहुत वर्षों का अनुभव था। उन्होंने सोचा कि अब हमें एक आश्रम या गुरुकुल खोलना चाहिए और कुछ स्वयंसेवक तैयार करने चाहिए। हिन्दुस्तान भले ही न चाहे, मुझे तो उसकी रक्षा करनी ही है।

उनके साथी उनसे सहमत थे। वे भी कहते थे कि "आश्रम स्थापित करना चाहिए, जहाँ हम फिनिक्स की तरह श्रमनिष्ठ और सादा जीवन फिर शुरू करेंगे।"

गांधीजी ने अहमदाबाद जाकर आश्रम के लिए कुछ जमीन मोल ली। यहाँ रहकर उन्हें बहुत ही अच्छे अनुभव हुए।

आश्रम की स्थापना में गांधीजी को बड़े कष्ट उठाने पड़े। पहले-पहल उनके पास रुपये नहीं थे। एक मित्र ने जब उनकी हालत के बारे में जाना, तो उसने उन्हें लिखा कि बापू, आप निश्चिन्त रहिये। मेरी सम्पत्ति आपकी सेवा में समर्पित है।

गांधीजी ने गद्‌गद हृदय से उनका वह प्रेमपूर्ण समर्पण स्वीकार किया। अब वे अपने नये जीवन की नींव डालने लगे।

आश्रम में चारों ओर से विद्यार्थी उमड़ पड़े। हर उम्र के विद्यार्थी थे। पूरे-के-पूरे परिवार उनके इस नये प्रयोग में शामिल होने आये थे।

गांधीजी ने सभी का स्वागत किया। गरीब-अमीर, शिक्षित-अशिक्षित सभी वहाँ भाई-भाई की तरह रहने लगे। गांधीजी सबको अपने परिवार का ही मानते थे। वे केवल एक शर्त रखते थे कि सब लोग कार्यकर्ताओं की बात मानें। वे उन्हें आत्मशुद्धि और शरीर-शुद्धि की बात बतलाते थे।

वे उनसे कहा करते थे कि झूठ कभी न बोलना चाहिए। अपने देश की रक्षा के लिए भी झूठ न बोलना चाहिए। हमें अपने दुश्मनों तक को चोट नहीं पहुँचानी चाहिए। उन पर गुस्सा नहीं, प्रेम करना चाहिए। बुराई का बदला भलाई से देना चाहिए। दुश्मन को भी स्नेह से जीतना चाहिए।

धन का संचय नहीं करना चाहिए। अपने पास केवल वही चीजें रहनी चाहिए, जो बहुत ज्यादा आवश्यक हों। सादी खुराक खानी चाहिए। खुशी से गरीबी अपनानी चाहिए।

गांधीजी अपने आश्रमवालों से निर्भयता और स्वतंत्रता की बातें किया करते थे। वे कहते थे कि हमारे परिवार में कायरों की आवश्यकता नहीं है। अपने विशाल परिवार में

हम ऐसे सदस्य चाहते हैं, जो स्वतंत्र, वीर और सरल स्वभाव के हों। जिस क्षमा का आधार निर्भयता में नहीं है, उस क्षमा की कोई कीमत नहीं। केवल वही बहादुर लोग क्षमा कर सकते हैं, जिनमें खतरे का सामना करने की शक्ति है।

आश्रम की दिनचर्या

गांधीजी के विद्यार्थी इतिहास, भूगोल, गणित, संस्कृत, अंग्रेजी आदि विषय सीखते थे। इनके अलावा वे खेती का काम करते थे और कताई-बुनाई करते थे। उन्हें शारीरिक श्रम से गुजारा करना होता था। सभी विद्यार्थी अपने गुजारे के लिए और नंगे-भूखे किसानों की सेवा के लिए शारीरिक श्रम द्वारा पैसा कमाते थे।

हर साल तीन महीने के लिए विद्यार्थी लम्बे दौरे पर जाया करते थे, ताकि अपने देश की हालत से वे भली-भाँति परिचित हो सकें, गरीब देहाती किसान, मजदूर भाइयों को शिक्षा दे सकें और उनकी सेवा कर सकें।

शुरू में आश्रम में भारी कामों के लिए मजदूर रखे गये थे, पर धीरे-धीरे गांधीजी को लगा कि आश्रमवासियों को यह सब खुद ही करना चाहिए। उनसे यह नहीं देखा गया कि खुद हमारे ही भाई-बहन हमारे नौकर रहें। उन्हें खुद भी उन मजदूरों की तरह श्रम करना चाहिए।

एक बार गांधीजी ने देखा कि झाड़ू देने और बर्तन मलने में विद्यार्थी खुश नहीं दीखते। यह काम उन्हें पसन्द नहीं आता। इसे करते वे उदास हो जाते हैं। तब गांधीजी ने सोचा कि जब तक कुछ लोग काम करें, तब तक दूसरे लोग सितार बजायें। तब काम में एक आनन्द होगा। यह बात सही निकली। बाजा सुनने से विद्यार्थी प्रसन्न हुए और फिर वे हँसी-खुशी से अपना काम करने लगे।

बचपन में गांधीजी की आया उनसे कहा करती थी कि मनुष्य की रचना करने के बाद परमात्मा ने उसे खड़ा करने की कोशिश की। लेकिन वह खड़ा नहीं हो सका। वह जमीन पर ऐसे गिरा, जैसे आटे का एक खाली बोरा हो। तब उसमें शक्ति लाने के लिए परमात्मा ने संगीत की सृष्टि की।

बात भी सही है। संगीत की मदद से मनुष्य खड़ा ही नहीं होता, वह बड़े-बड़े काम भी सहज में पूरे कर लेता है।

पहली परीक्षा : अस्पृश्यता का सवाल

एक दिन गांधीजी को एक मित्र का पत्र मिला कि एक हरिजन अपने स्त्री-बच्चों के साथ आश्रम में आना चाहता है। वह गरीब तो है ही, तिस पर हरिजन है। दुनिया में रहना उसके लिए कठिन हो गया है। उसे

मजदूरी नहीं मिलती। उसके बच्चे भूखे रहते हैं। उसे उम्मीद है कि गांधीजी के पास उसे आश्रय मिलेगा।

उसकी चिट्ठी पाकर गांधीजी खुश हुए। वे सोचने लगे कि अब हमारे विचारों को अमल में लाने का समय आ गया। उन्होंने आश्रमवासियों को बुलाया और उन्हें उस हरिजन भाई का पत्र सुनाया। सबने शान्ति से उसे सुना।

पत्र सुनकर कस्तूरबा ने पूछा : "अच्छा! आप क्या उत्तर देते हैं?"

"मैं उन्हें लिख रहा हूँ कि हम आपके आने का इन्तजार कर रहे हैं।

फिर उन्होंने उन्हें समझाते हुए कहा : "ये हमारे भाई हैं, इसीलिए हम बहुत खुशी से उनका स्वागत करेंगे। मैं उनमें और अपने में कोई फर्क नहीं देखता।"

कस्तूरबा ने बड़े दुःख से सिर हिलाया। "ये तो अछूत हैं। हम एक साथ कैसे रह सकते हैं? उनके साथ रहने से हम भी अछूत हो जायेंगे।"

गांधीजी ने कहा : "हमारा धर्म हमें हर प्राणी से प्रेम करना सिखाता है। छुआछूत मानवता का कलंक है। अब उसे अपने देश से उखाड़ डालने का समय आ गया है। यदि हम ऐसा अन्याय सहन करते रहें, तो हम कैसे सुखी रहेंगे? हम कैसे सत्याग्रही रहेंगे और किस प्रकार

सत्य की खोज कर सकेंगे ? क्या तुम्हें पता नहीं कि ये हरिजन भी हमारी ही तरह मनुष्य हैं ? क्या तुम्हें यह मालूम नहीं कि हमारी आर्य जाति ने हिन्दुस्तान पर जब कब्जा किया, तो यहाँ के आदिवासियों को शिक्षा देने के बजाय उन्हें अलग रखना ही ज्यादा सरल समझा। उन्हें उठाने के बदले हमने उन्हें दबाकर रखा। हमने उनसे जबरन सबसे कठिन और गन्दे काम करवाये।

"अफ्रीका में जब गोरे लोग हम पर अन्याय करते हैं, तो हमें गुस्सा आता है। लेकिन हम अपने अछूत भाइयों के साथ ठीक वैसा ही बर्ताव करते हैं। हमें इसकी शिकायत नहीं करनी चाहिए। ईश्वर हमें न्यायपूर्ण सजा दे रहा है। गोरी जाति हमें इसलिए सताती है कि हम खुद अपने साथियों को सताते हैं। अपने चारों ओर रहनेवाले सात करोड़ नेक और वफादार साथियों को हम अलग किये हुए हैं। हम उन्हें अपने मन्दिरों में नहीं आने देते। हम उनके छोटे-छोटे बच्चों को अपनी पाठशाला में नहीं पढ़ने देते। हम जबर्दस्ती उनसे सार्वजनिक सफाई का काम करवाते हैं। हम उन्हें पानी के बिना प्यासे रहने देते हैं। हम अक्सर उन्हें ऐसे कुएँ देते हैं, जिनमें गर्मी के दिनों में पानी सूख जाता है। उनकी सेवाओं के लिए हमने कैसे पुरस्कार उन्हें दिये हैं ?

"हम कठोर हैं। हम पापी हैं। हम इतने मूर्ख हैं कि

अपने को दूसरे मनुष्य से श्रेष्ठ मानते हैं। अपने को ऐसे लोगों से श्रेष्ठ मानते हैं, जो हमारी बनिस्बत बहुत ही ज्यादा उपयोगी काम करते हैं।"

गांधीजी की बात सबको जँच गयी।

जनता का प्रतिकरण

थोड़े दिनों बाद वह हरिजन-परिवार आ पहुँचा। लेकिन तब गांधीजी को कुछ दूसरी मुसीबतों का सामना करना पड़ा। जब लोगों ने सुना कि कुछ हरिजन-परिवार भी आश्रम में आ गये हैं, तो वे बहुत नाराज हुए। जो लोग अभी तक गांधीजी को पैसे की मदद कर रहे थे, वे सोचने लगे कि और मदद देना धर्म के विरुद्ध है। धीरे-धीरे गांधीजी के पास के सब रुपये समाप्त हो गये। एक दिन वह आया, जब उनके पास कुछ भी न रहा।

फिर भी गांधीजी निराश न हुए। वे जानते थे कि वह दिन नजदीक ही है, जब हिन्दू लोग अपनी भूल समझ लेंगे और इन गरीब हरिजनों को गले लगाकर अपने परिवार में शामिल कर लेंगे। उन्होंने यह जरूरी समझा कि हम अपने प्रत्यक्ष उदाहरण द्वारा इसका प्रचार करेंगे। भले ही इस कार्य की सिद्धि में हमें अपने प्राण त्यागने पड़ें।

गांधीजी सोचने लगे कि हम अभी तक पूर्ण स्वावलंबी नहीं हो पाये। पर यह भी समय आने पर हो ही जायगा।

निराश नहीं होना चाहिए। उन्होंने अपने विद्यार्थियों और मित्रों को बुलाकर चेतावनी दी कि "भाइयो, तैयार रहो। सम्भव है कि हमें थोड़े दिनों में अपना आश्रम छोड़ना पड़े। हमारे सब साधन समाप्त हो गये हैं।

"हम सब लोग हरिजनों के मुहल्ले में जाकर काम करेंगे। हम भूखों नहीं मरेंगे। कहीं न कहीं तो हमें कुछ-न-कुछ काम मिल ही जायगा।"

गांधीजी के साथियों ने कहा: "हम तैयार हैं।"

अनपेक्षित सहायता

एक और हफ्ता बीत गया। एक दिन सुबह बड़ा सुहावना मौसम था। विद्यार्थियों ने गांधीजी से आकर कहा कि बहुत बढ़िया मोटर में बैठकर एक सज्जन उनसे मिलने आये हैं। वे भीतर नहीं आना चाहते। फाटक पर ही खड़े हैं।

गांधीजी उनसे मिलने गये।

उस अपरिचित मेहमान ने कहा: "महात्माजी! मुझे मालूम हुआ है कि आपको कुछ आर्थिक कठिनाइयाँ हैं। मैं आपकी कुछ मदद करना चाहता हूँ। क्या आप उसे स्वीकार करेंगे?"

"भाई, आपको बहुत धन्यवाद देता हूँ। ईश्वर ने आपको हमारी मदद के लिए भेजा है।"

उस अजनबी मेहमान ने प्रणाम करके कहा : “मैं कल इस वक्त फिर आऊँगा। आप मेरा इन्तजार कीजियेगा।”

मोटर चली गयी। गांधीजी उसी जगह खड़े रह गये!

“ईश्वर हमारी मदद कर रहा है” वे सोचने लगे। “नहीं तो एक-दो दिन के बाद ही मुझे अपने साथियों को लेकर चला जाना पड़ता।”

दूसरे दिन ठीक उसी समय आश्रम के फाटक के बाहर उस मोटर का भोंपू सुनाई दिया।

गांधीजी उस अनजान मेहमान से मिलने फाटक पर गये।

उसने कहा : “लीजिये! बापू! आप यह लिफाफा रख लीजिये। किसीसे कुछ न कहियेगा।”

प्रणाम करके वह चला गया। गांधीजी को बहुत बड़ी धन-राशि मिल गयी थी।

उस दिन से गांधीजी को कभी रुपये की कमी न हुई। चारों ओर से लोग उनके पास इतने रुपये भेज देते कि कभी-कभी वे असमंजस में पड़ जाते थे कि इन रुपयों को खर्च कैसे करें?

उस पैसे को गांधीजी ने अपने हरिजन भाइयों के कष्ट दूर करने में खर्च किया। काम भी तो बहुत करना था। इससे भी हजारों गुने अधिक रुपये होते, तो भी काम अधूरा ही रह जाता।

●

सर्वोदय तथा भूदान-साहित्य

धम्मपदं
२.००
गीता-प्रवचन १.२५ सजिल्द १.५०
शिक्षण-विचार
२.५०
आत्मज्ञान और विज्ञान १.००
सर्वोदय-विचार स्वराज्य-शास्त्र १.००
ग्रामदान
१.००
लोक-नीति
१.२५
स्त्री-शक्ति
०.७५
भूदान-गंगा (छह खंड) १.००
मोहब्बत का पैगाम
२.५०
ज्ञानदेव-चिंतनिका
१.००
शांति-सेना
०.५०
कार्यकर्ता-पाथेय
०.५०
साहित्यिकों से
०.५०
साम्य-सूत्र
०.३८
जय जगत्
०.५०
सर्वोदय-पात्र
०.२५
राम-नाम : एक चिन्तन ०.३०
समग्र ग्राम-सेवा की ओर
[दो खंड] ४.००
" " [तीसरा खंड] २.५०
बुनियादी शिक्षा-पद्धति
०.६०
सम्पत्तिदान-यज्ञ
०.५०
व्यवहार-शुद्धि
०.३८
गाँव-आन्दोलन क्यों !
२.५०
गांधी-अर्थ-विचार
१.००
स्थायी समाज-व्यवस्था
२.५०

स्त्रियाँ और ग्रामोद्योग
०.२५
ग्राम-सुधार की एक योजना ०.७५
सर्वोदय-दर्शन
३.००
दादा की नजर से लोकनीति ०.५०
सत्य की खोज
१.५०
माता-पिताओं से
०.३८
बालक सीखता कैसे है ! ०.५०
बोलती घटनाएँ [चार भाग]
प्रत्येक ०.५०
नक्षत्रों की छाया में
१.५०
बाबा विनोबा [छह भाग]
प्रत्येक ०.२०
चलो, चलें मँगरौठ
०.७५
भूदान-गंगोत्री
२.५०
भूदान-आरोहण
०.५०
सर्वोदय-विचार
०.७५
ग्रामदान क्यों !
१.२५
भूदान-यज्ञ : क्या और क्यों ! १.५०
सफाई : विज्ञान और कला ०.७५
सुन्दरपुर की पाठशाला ०.७५
गो-सेवा की विचारधारा
०.५०
गो-उपासना
०.२५
घर-घर में गाय
०.२५
समाजवाद से सर्वोदय की ओर ०.३८
मेरी विदेश-यात्रा
०.६२
सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र ०.२५
शोषणमुक्ति और नव समाज ०.६२
भूदान से ग्रामदान
०.१२

पूर्व-बुनियादी	०.५०
एशियाई समाजवाद	१.५०
लोकतांत्रिक समाजवाद	१.५०
बच्चों की कला और शिक्षा	८.००
क्रांति की राह पर	१.००
क्रान्ति की ओर	१.००
गांधीजी क्या चाहते थे ?	०.५०
भूदान-पोथी	०.२५
सर्वोदय की सुनो कहानी ! [पाँच भाग]	१.२५
किशोरलाल भाई की जीवन-साधना	२.००
ऐसा भी क्या जीना	२.००
गुजरात के महाराज	२.००
जाजूजी : जीवन और साधना	१.२५
अन्तिम झाँकी	१.५०
ग्रामराज क्यों ?	०.३८
ग्राम-स्वराज्य	०.५६
प्राकृतिक चिकित्सा-विधि	१.५०
बापू के पत्र	१.२५
कुष्ठ-सेवा	१.२५
अहिंसात्मक प्रतिरोध	०.५०
प्यारे बापू [तीन भाग]	१.५०
बापू के जीवन मे प्रेम और श्रद्धा	०.३०
गांधीजी की गृह-माधुरी	०.३०
हमारे बा[illegible]	०.१२
[illegible]त्री के पथ पर	०.५०
[illegible] जीवन-विकास	०.५०
कताई गणित [भाग १]	१.००
[भाग २,३,४] प्रत्येक	०.७५
बुनाई	३.००
कताई-शास्त्र	२.००
वर्ग-संघर्ष	०.६२
विश्वशान्ति क्या संभव है ?	१.२५
धरतीमाता की गोद में	०.७५
गाँव का गोकुल	०.२५
सर्वोदय-संयोजन	१.००
श्रम-दान	०.२५
धर्म-सार	०.२५
स्थितप्रज्ञ-लक्षण	०.२५
विनोबा-संवाद	०.३८
सत्याग्रही शक्ति	०.३१
गांधी-धाम	०.५०
एक भेंट [नाटक]	०.६२
कुलदीप [नाटक]	०.२५
प्रायश्चित्त [नाटक]	०.२५
चन्द्रलोक की यात्रा [नाटक]	०.२५
गांधी : एक सामाजिक क्रांतिकारी	०.३८
ताई की कहानियाँ	०.२५
बापू की प्यारी तकली	०.१२
सत्संग	०.५०
पावन-प्रसंग	०.५०
स्मरणांजलि	१.५०
घरेलू कताई की आम गिनतियाँ	०.७५
घरेलू कताई की आम बातें	१.२५
ताँत बनाना	०.६०
हाथ-चक्की	०.५०
खाद और पेड़-पौधों का पोषण	१.००
जापान की खेती	०.७५
ग्रामोदय खादी संघ	०.२५